CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूहेलखंड-कुमायुं

और

जैन धर्म

••

लेखक

डा० ज्योति प्रसाद जैन
एम.ए., एल-एल.बी., पी-एच.डी., 'इतिहासरत्न

••

लखनऊ

१९७० ई०

5274

मूल्य 2.50

हिन्द मैन्यू० एण्ड प्रिंटिङ्ग वर्क्स, यहियागंज, लखनऊ-३ फोन २६३११

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पार्श्व-जिन स्तवन

नमोस्तु पार्श्वनाथाय, विघ्नविच्छेदकारिणे ।
नागेन्द्र कृतच्छत्राय, सर्वादेयाय ॐ नमः ।।

तमाल-नीलैः सधनुस्तडिद्गुणैः, प्रकीर्ण-भीमाऽशनि-वायु-वृष्टिभिः ।
बलाहकैर्वैरि-वशैरुपद्रुतो, महामनायो न चचाल योगतः ।।
बृहत्फणा-मण्डल-मण्डपेन, यं स्फुरत्तडित्पिङ्ग-रुचोप सर्गिणाम् ।
जुगूह नागो धरणो धराधरं, विराग सन्ध्या-तडिदम्बुरो यथा ।।
स सत्य-विद्या-तपसां प्रणायकः, समग्रधीरुग्रकुलाऽम्बरांशुमान् ।
मया सदा पार्श्व जिनः प्रणम्यते, विलीन-मिथ्यापथ-दृष्टि-विभ्रमः ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

डा० ज्योति प्रसाद जैन, लखनऊ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

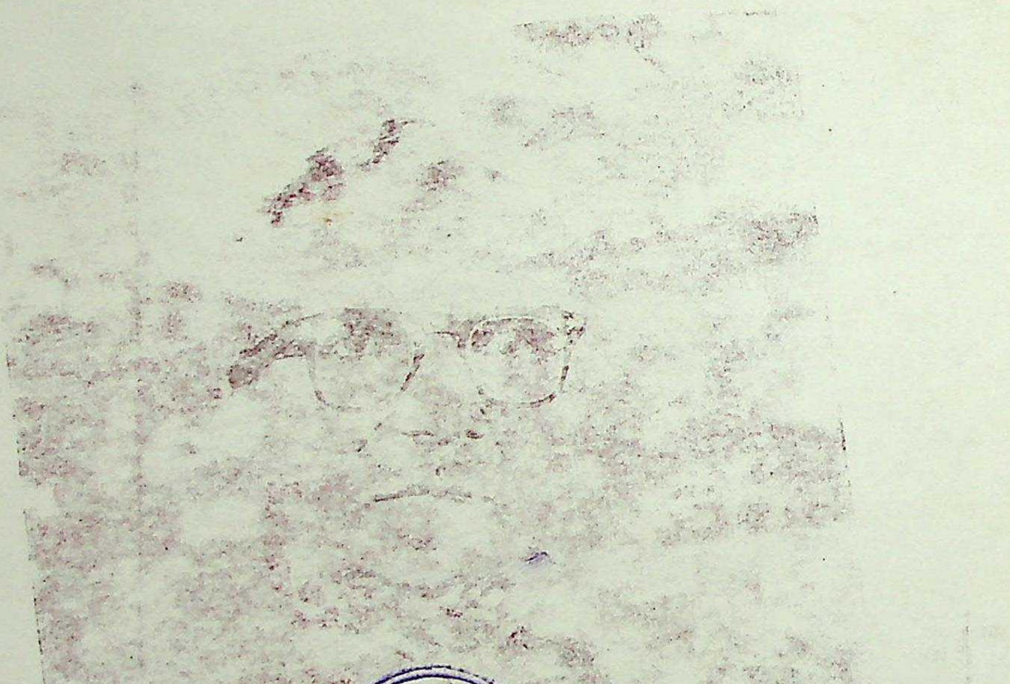

State Museum Library, Lucknow
5274

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूहेलखंड-कुमायुं और जैन धर्म

डा० ज्योति प्रसाद जैन,
एम०ए०, एल-एल०बी०, पी-एच०डी०, लखनऊ

'**कलौ संघे शक्तिः**', यह उक्ति आज के युग में प्रायः सर्वत्र चरितार्थ हुई दृष्टिगोचर होती है। जो समाज या समुदाय संगठित नहीं होता वह निर्बल हो जाता है। वह अपने स्वत्वों और अधिकारों की रक्षा नहीं कर सकता। लोक की दृष्टि में उसका मान नहीं रहता। फलस्वरूप, उक्त समाज का और उसकी निजी संस्कृति का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता है।

सामाजिक सगठन का मूलाधार भावात्मक एकता होती है जो न केवल उक्त संगठन को संभव बनाती है वरन् उसका पोषण करती रहती है तथा उसे सुदृढ़ बनाये रखती है। और, भावात्मक एकता का सम्पादन करने के लिये यह आवश्यक है कि जिन व्यक्तियों या समुदायों को संगठित करना है उनमें से प्रत्येक एक दूसरे से भली प्रकार परिचित हो, उसकी उपलब्धियों और गुणों से, दोषों और कमियों से भी परिचित हो और वे परस्पर आत्मौपम्य स्थापित करने के लिये लालायित हों।

इसी उद्देश्य को लेकर ग्राम, नगर या स्थान विशेष, अथवा जिला, प्रदेश या देश विशेष के निवासी समानधर्मा या सजातीय व्यक्तियों की परिचायिकाएँ, विवरण पुस्तिकाएँ, डायरेक्टरी, गजेटियर आदि बनाये जाते हैं। अबसे लगभग साठ वर्ष पूर्व दिगम्बर जैन समाज के तत्कालीन नेता बम्बई निवासी सेठ माणिकचन्द झवेरी ने एक दिगम्बर जैन डायरेक्टरी का संकलन एवं प्रकाशन कराया था। यह डायरेक्टरी समाज के संगठन एवं जागृति में पर्याप्त महत्वपूर्ण सिद्ध हुई। तदनन्तर श्वेताम्बर नेताओं ने भी श्वेताम्बर समाज के सम्बन्ध में इस प्रकार के कतिपय उपक्रम किये। पिछले दो-तीन दशकों में दिगम्बर समाज में अवध डायरेक्टरी, पद्मावतपुरवाल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

डायरेक्टरी आदि कई इस कोटि के प्रकाशन हुये हैं। दिगम्बर जैन परिषद् के वयोवृद्ध कर्मठ कार्यकर्त्ता श्री उग्रसेन जी ने काशीपुर में रहते हुये कुमायुं-रूहेलखण्ड जैन परिषद् की स्थापना कराई और उक्त क्षेत्र के जैन बन्धुओं में जागृति उत्पन्न करने तथा संगठन स्थापित करने की दिशा में सद्प्रयास किये। इसी उद्देश्य को लेकर उन्होंने प्रस्तुत डायरेक्टरी के निर्माण एवं प्रकाशन की योजना बनाई। प्रसन्नता की बात है कि उनकी यह योजना कार्यान्वित होकर समाज के सन्मुख उपस्थित है।

क्षेत्र परिचय व जनसंख्या

रूहेलखण्ड-कुमायुं नाम से सूचित जिस भूखंड की यह जैन परिचायिका (डायरेक्टरी) प्रकाशित की जा रही है वह वर्तमान सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र-जनतन्त्र भारतीय संघ के उत्तर प्रदेश राज्य का पश्चिमोत्तर भाग है और वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था के अनुसार गढ़वाल, कुमायुं और बरेली (रूहेलखंड) नाम की तीन कमिश्नरियों में विभाजित है। इस सम्पूर्ण भूभाग के उत्तर में तिब्बत देश है, उत्तर-पूर्व में नैपाल राज्य है, पूर्व में अवध प्रान्त की लखनऊ कमिश्नरी है, दक्षिण में गंगा नदी और तदनन्तर अन्तर्वेद (गंगा-यमुना दोआब) के जिले हैं, पश्चिम में गंगा नदी तथा उसके पार मेरठ कमिश्नरी है और उत्तर-पश्चिम में हिमाचल प्रदेश है। सन् १९६१ की राजकीय जनगणना के अनुसार इस पूरे भूभाग की सम्पूर्ण जनसंख्या १,११,७९,७२४ है जिसमें जैन केवल ४,४०२ अर्थात्, .०४ प्रतिशत अथवा १०,००० पीछे ४ के अनुपात से हैं। इनमें २,५६७ पुरुष और १,८३५ स्त्रियाँ हैं, तथा १,५३७ व्यक्ति ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करते हैं और २,८६५ शहरी क्षेत्रों में।

इस भूभाग का धुर उत्तरी भाग उत्तराखंड कहलाता है और पूर्णतया मध्य हिमालय के अन्तर्गिरि की उत्तुंग-हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियों में स्थित है। २५ जनवरी सन् १९६९ तक यह एक पृथक कमिश्नरी थी और इसमें तीन उत्तरी जिले थे। गढ़वाल-कुमायुँ कमिश्नरियों के शेष जिले मध्य-हिमालय की दक्षिणी उपगिरि की नीची बाह्य पर्वत श्रेणियों में स्थित हैं, केवल नैनीताल जिले के पर्वतांचल (भाबर) और तराई क्षेत्र उनके बाहर नीचे की ओर स्थित है। रूहेलखंड या बरेली कमिश्नरी के जिले गंगा नदी और हिमालयी पर्वतांचल के मध्यवर्ती तराई एवं मैदानी भाग में बसे हैं।

उत्तराखंड कमिश्नरी में उत्तरकाशी, चमोली और पिथौरागढ़ नाम के तीन जिले थे जो वर्तमान भारत देश तथा उसके उत्तर प्रदेश राज्य की धुर उत्तरी सीमा पर स्थित हैं। इन जिलों का भौगोलिक एवं राजनीतिक महत्व तो है ही, सांस्कृतिक महत्व भी प्रभूत है। पर्वतराज कैलास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(अष्टापद) तथा परमपुनीत मानसरोवर के मार्ग पर स्थित, तीर्थंकरों, बुद्धों, ऋषियों और मुनियों की पावन तपस्थली तथा यक्ष, ऋक्ष, नाग, गंधर्व, किन्नर, अप्सरा आदि की आद्य आवास भूमि यह प्रदेश सम्पूर्ण भारत के लोक मानस में सहस्त्राब्दियों से परमपूज्य दर्शनीय तीर्थ भूमि रहता आया है। उत्तरकाशी जिले में भारतवर्ष की प्रसिद्ध महानदियों गंगा और यमुना के उद्गम स्थान, गंगोत्री और यमुनोत्री नाम से प्रसिद्ध हैं। चमोली जिले में यक्षराज कुबेर की अलकापुरी का स्थान, जैन हरिवंश पुराण आदि में उल्लेखित गंधमादन पर्वत, अलकनंदा और भागीरथी के पंचप्रयाग, बद्रीनाथ का सुप्रसिद्ध वैष्णव धाम और केदारनाथ का सर्वप्रसिद्ध शैवधाम हैं। पिथौरागढ़ जिले में काली (शारदा या घाघरा), सरयू, रामगंगा आदि नदियों के स्रोत, और नन्दादेवी, त्रिशूली आदि प्रसिद्ध पर्वत शिखर तथा कैलास और मानसरोवर के लिये निकटतम् पार्वतीय मार्ग हैं जिनसे होकर भारतीय तीर्थ यात्री चिरकाल से उक्त दोनों पवित्र स्थानों के दर्शनार्थ जाते रहे हैं। सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार उत्तराखंड डिवीज़न और उसके जिलों की जैन जनसंख्या निम्न प्रकार थीः—

उत्तरकाशी	—	२५ (पुरुष १८, स्त्रियाँ ७)
चमोली	—	११ (पुरुष ८, स्त्रियाँ ३)
पिथौरागढ़	—	८ (पुरुष ३, स्त्रियाँ ५)
सम्पूर्ण उत्तराखंड डिवीज़न	—	४४ (पुरुष २९ स्त्रियाँ १५)

ये समस्त जैन इन जिलों के ग्रामीण क्षेत्रों में ही निवास करते हैं। इन जिलों की वास्तविक जैन जनसख्या तथा यहां के जैनों का कोई परिचय प्रस्तुत डायरेक्टरी में नहीं दिया जा सका। वर्तमान में वहां कोई प्राचीन या अर्वाचीन जैन मन्दिर, स्मारक आदि भी रहा ज्ञात नहीं होता। वैसे चमोली जिले के परम वैष्णवधाम बद्रीनाथ मन्दिर की मूलनायक मूर्ति के जैन तीर्थंकर प्रतिमा होने की अनुश्रुतियाँ चली आती हैं। अनेक आधुनिक पर्यटकों एवं लेखकों ने भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से ऐसे संकेत किये हैं कि संभवतः वह मूर्ति मूलतः एक जिन प्रतिमा ही है। मूर्ति के भली प्रकार दर्शन नहीं हो पाते। वह बस्त्राभूषणों से लदी है और अंधेरे गर्भगृह में विराजमान हैं। सामान्य दर्शनार्थी को कठिनाई से उसकी झलकमात्र देख मिलती है। फिर भी इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि वह कृष्णपाषाण की एक ध्यानस्थ-पद्मासनस्थ योगि की मूर्ति है और अपने मूलरूप में संभवतया पूर्णतया दिगम्बर है। मूर्ति के यह वर्णन जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाओं पर ही विशेष रूप से घटित होते हैं। क्या आश्चर्य है कि उक्त स्थान में मूलतः कोई जिन मन्दिर रहा हो जिसकी मूलनायक प्रतिमा तीर्थंकर ऋषभ या पार्श्व की रही हो और जब ९वीं शती ई० के प्रारम्भ के लगभग शंकराचार्य यहां आये तो उन्होंने इस मन्दिर और मूर्ति को बद्रीविशाल के नाम से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रसिद्ध करके उनका वैष्णवीकरण कर दिया हो। उस काल में उक्त प्रदेश में जैनों का अभाव इस क्रिया में सहायक रहा होगा।

कुमायुं कमिश्नरी में टिहरीगढ़वाल, पौड़ीगढ़वाल या गढ़वाल, अल्मोड़ा और नैनीताल नाम के चार जिले थे। १९६१ की जनगणना के अनुसार इन जिलों की जैन जनसंख्या निम्न प्रकार थी :

टिहरी गढ़वाल	—	६८	(पुरुष ३४, स्त्रियाँ ३४)
पौड़ी गढ़वाल	—	६८	(पुरुष ४४, स्त्रियाँ २४)
अल्मोड़ा	—	५	(पुरुष ३, स्त्रियाँ २)
नैनीताल	—	२९७	(पुरुष १५३, स्त्रियाँ १४४)

सम्पूर्ण कुमायुं डिवीजन में ४३८ (पुरुष २३४, स्त्रियां २०४) जैन हैं, जिनमें से १५० व्यक्ति ग्रामीण क्षेत्रों में और २८८ शहरी क्षेत्रों में निवास करते हैं। गढ़वाल तथा नैनीताल में अधिकांश जैन शहरी क्षेत्रों में रहते हैं, नैनीताल के ग्रामीण क्षेत्रों में भी १३२ जैन रहते हैं। इस सम्बन्ध में यह ध्यान देने की बात है कि १९६७ में प्रस्तुत डायरेक्टरी के लिये एकत्रित आँकड़ों के अनुसार केवल नैनीताल जिले की जैन जनसंख्या ३६१ है अर्थात् सरकारी संख्या से लगभग २२ प्रतिशत अधिक। अन्य जिलों में भी वह सरकारी आँकड़ों से अधिक ही है।

कुमायुं-गढ़वाल

उपरोक्त उत्तराखंड और कुमायुं कमिश्नरियों के सातों जिलों स व्याप्त क्षेत्र परम्परा से दो प्रमुख भागों में बँटा चला आया है, जो कि मध्यकाल के प्रायः प्रारम्भ से ही क्रमशः गढ़वाल और कुमायुं के नाम से प्रसिद्ध रहते आये हैं। पश्चिमी भाग का नाम गढ़वाल है जिसके अन्तर्गत टिहरी गढ़वाल, पौड़ी गढ़वाल, उत्तरकाशी और चमोली जिले विद्यमान हैं। पूर्वी भाग का नाम कुमायुं है जिसमें पिथौरागढ़, अल्मोड़ा और नैनीताल जिले पड़ते हैं। उत्तर प्रदेश राज्य सरकार ने जनवरी १९६९ में इन जिलों का फिर से पुनर्गठन करके परंपरागत गढ़वाल और कुमायुं नाम की ही दो कमिश्नरियां बना दी हैं, पहली में गढ़वाल के चारों जिले और दूसरी में कुमायुं के तीनों जिले सम्मिलित करके उत्तराखंड कमिश्नरी को समाप्त कर दिया है।

गढ़वाल, गढ़वान, गढ़पाल या गढ़देश के नामकरण का कारण यह है कि प्राचीन काल में इस प्रदेश में ५२ गढ़ या दुर्ग थे जिन पर छोटे-छोटे स्थानीय पहाड़ी राजाओं का अधिकार था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इनमें से प्रत्येक गढ़पाल अपने दुर्ग या गढ़ी से आसपास की पहाड़ियों और घाटियों पर शासन करता था। बावन गढ़ों के कारण इस देश को बावनी भी कहते थे। चमोली जिले के जोशीमठ के आसपास एक छोटा सा क्षत्रिय राज्य भी था जहां इन्द्रप्रस्थ के कुरूवंशियों की एक शाखा शासन करती थी। अन्तिम राजा भानुप्रताप ने अपनी पुत्री का विवाह मालवा के एक परमार राजकुमार के साथ कर दिया और उसे ही अपना राज्य भी सौंप दिया। इस राजपुत्र का नाम कनकपाल था और वर्तमान चमोली जिले में स्थित चांदपुरगढ़ी को उसने अपनी राजधानी बनाया था। कुछ समय बाद इस वश की राजधानी देवलगढ़ में स्थानान्तरित हुई। इन परमार राजाओं ने शनैः शनैः शक्ति संचय की ओर १२ वीं शती के उपरान्त एक-एक करके विभिन्न गढ़पालों को अपने अधीन कर उन्होंने द्रुतवेग से अपना राज्य विस्तार करना प्रारम्भ किया। १५ वीं शताब्दी आते-आते सम्पूर्ण गढ़देश पर उनका एकच्छत्र शासन हो गया और राजधानी भी बदल कर वर्तमान गढ़वाल जिले के श्रीनगर में स्थापित हो गई। आगामी तीन शताब्दियों में श्रीनगर का यह परमार राज्य अपनी शक्ति और वैभव के चरम शिखर पर था। किन्तु १९ वीं शती के प्रारम्भ में नैपाल के गोरखों ने आक्रमण करके परमार राजा सुदर्शन साह को मार भगाया और गढ़देश पर अपना अधिकार कर लिया। १८१५ ई० में अंग्रेजों ने गोरखों को पराजित करके उनसे यह प्रदेश जीत लिया और सुदर्शन साह को पश्चिमी भाग, जिसमें वर्तमान टिहरी गढ़वाल और उत्तरकाशी जिले हैं, वापस कर दिया तथा शेष भाग को अपने शासन में ले लिया। सुदर्शन साह ने अंग्रेजों के अधीनस्थ नरेश के रूप में टिहरी नगर को अपनी राजधानी बनाकर राज्य करना प्रारम्भ किया जहाँ १९४९ में उक्त राज्य के भारतीय संघ में विलयन पर्यन्त उसके वंशज राज्य करते रहे। इस टिहरी राज्य के उत्तरी भाग (उत्तरकाशी जिले) में तो जैनी जन, एकाध अपवाद को छोड़कर, शायद कभी भी जाकर ढंग से नहीं बसे, किन्तु टिहरी में उक्त राज्य की स्थापना के समय (१८१५ ई०) से ही बिजनौर आदि निकटवर्ती मैदानी जिलों के अनेक जैनी जाकर बस गये और लेन-देन एवं व्यापार व्यवसाय द्वारा उन्होंने वहां अपनी स्थिति अच्छी बना ली। अब भी कई जैन परिवार वहां प्रतिष्ठित हैं। उक्त जिले के नरेन्द्रनगर, देवप्रयाग आदि कस्बों में भी कई जैन परिवार हैं। उत्तरकाशी की ही भाँति ब्रिटिश गढ़वाल के चमोली जिले में भी, कतिपय अपवादों को छोड़कर, मध्यकाल से लेकर अब तक जैनी कभी ढंग से जाकर नहीं बसे। एक तो वह प्रदेश बड़ी ऊँचाई पर है, हिमाच्छादित है, दूसरे शैवों और वैष्णवों का प्रसिद्ध गढ़ शताब्दियो से रहता आया है। अतएव प्राचीन कुरुवंशियों, कत्यूरियों और प्रारम्भिक परमारों के समय में भले ही कुछ मैदानी जैन सैनिक, व्यापारी आदि वहां गये और रहे हो सकते हैं, किन्तु राजधानी के श्रीनगर में स्थानांतरित हो जाने के बाद वे श्रीनगर में ही व्यवस्थित रूप से बसे। इस नगर में कई जैन परिवार सैकड़ों वर्ष से बसे हैं, जिनमें कई पर्याप्त समृद्ध एवं प्रतिष्ठित हैं। श्रीनगर में एक अच्छा शिखरवन्द जैन मन्दिर भी है। १८९४ ई० में एक भयंकर बाढ़ में पूरा श्रीनगर बह गया था और उसकी अधिकांश इमारतें ध्वस्त हो गई थीं, उन्ही में वहां का प्राचीन जैन मन्दिर भी ध्वस्त हो गया था, जो कई शती पूर्व, संभवतया १६ वीं या १७ वीं शती में बना था। वर्तमान मंदिर १९०० ई० के लगभग बना है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विष्णु के कूर्मावतार की अनुश्रुति से सम्बन्ध होने के कारण अल्मोड़ा जिले की चम्पावत तहसील में स्थित कानादेव नामक पहाड़ी कूर्म शिला या कूर्माचल कहलाई और वह बनखंड कूर्मवन कहलाया, कुमार कार्त्तिकेय का जन्मस्थान होने से वह कुमार वन भी कहलाया। इन्हीं शब्दों का अपभ्रष्ट रूप कुमायुं हुआ। प्रारम्भ में उक्त जिले के उक्त पूर्वी भाग (वर्तमान चम्पावत तहसील) का नाम ही कर्माचल प्रदेश, कूर्मदेश, कूर्मप्रस्थ या कुमायुं था, जो काली नदी का तटवर्ती होने से काली-कुमायुं प्रायः अब तक कहलाता है। इसी प्रदेश में १० वीं शती के मध्य के लगभग चन्द्रवंशी चांद राजपूतों का छोटा सा राज्य स्थापित हुआ। किन्तु जब १४ वीं-१५वीं शताब्दी से उक्त राज्य का द्रुत विस्तार हुआ और शनैः-शनैः उत्तर में तिब्बत की सीमा से लेकर दक्षिण में तराई तर्यन्त वह फैल गया तब से यह सारा ही प्रदेश कुमायुं कहलाने लगा।

कुमायुं के पिथौरागढ़ जिले में भी, उत्तरकाशी और चमोली की भांति ही, जैनी कभी ढंग से वसे नहीं लगते। किन्तु अल्मोड़ा जिला अति प्राचीन काल से सभ्यता का केन्द्र रहा है। मौर्यकाल से गुप्तकाल पर्यन्त यहां कुणिन्दो का राज्य था। इस जिले से सर्व प्राचीन मुद्राय कुणिन्दों की ही प्राप्त हुई हैं और उन पर चैत्यवृक्ष, नन्द्यावर्त आदि चिन्ह उत्कीर्ण मिले हैं जो जैन प्रभाव के सूचक हो सकते हैं। तदनन्तर यहां ब्रह्मपुर के पौरववंशी राज्य का उत्कर्ष हुआ। ६३५ ई० में चीनी यात्री हुएनसांग भी इस राज्य में आया था। ब्रह्मपुर राज्य के पतन के वाद कत्यूरी राजाओं का शासन ७वीं-८वीं शती से १२ वीं शती के लगभग तक रहा। बैजनाथ-कार्त्तिकेयपुर, द्वाराहाट, लखन-पुर आदि उनके प्रमुख नगर थे। इन स्थानों में तथा जिले के अन्य अनेक स्थानों में उस काल के अनेक मन्दिर, देवमूर्तियाँ, स्तंभ, चबूतरे, नौले या बावड़ियाँ आदि के अवशेष विद्यमान हैं। इन्हीं भग्नावशेषों में, विशेषकर द्वाराहाट में, महापंडित राहुल सांकृत्यायन, प्रोफेसर कृष्णदत्त बाजपेयी आदि विद्वानों ने उस काल की कई खंडित-अखंडित जैन प्रतिमाएँ भी देखी थीं। एक प्रतिमा लगभग सवा फुट ऊँची, स्थानीय भूरे पत्थर की खड्गासन दिगम्बर वहां के खोलाभीतर मुहल्ले में स्थित हरिसिद्धि देवी के मन्दिर में देखी गई, जिसे कला की दृष्टि से प्रो० वाजपेयी ने ११वीं शती ई० की अर्थात् कत्यूरी काल की ही अनुमान की है। एक अन्य राहुल जी ने द्वाराहाट की एक ब्राह्मणी पुजारिन के घर में देखी थी। अन्य कई जिन प्रतिमाएँ भी खंडित रूप में यत्र-तत्र दृष्टिगोचर हुईं। इससे प्रतीत होता है कि कुमायुं के मध्य भाग में जैन धर्म और जैनों का अल्पाधिक अस्तित्व संभवतया कुणिन्द और पौरव युगों से ही था और कत्यूरी काल में तो वहां जैन मन्दिर भी निर्मापित हुये थे। कत्युरी राजाओं की अवनति होने पर इस जिले में चांद वंश की स्थापना और उत्कर्ष हुआ। मध्यकाल में यह राजपूत वंश ही धीरे-धीरे सम्पूर्ण कुमायुं का एकच्छत्र शासक हो गया, जिसका अन्त १८ वीं शती के अन्त में गोरखा आक्रमण ने किया। गोरखों को अंग्रेजों ने निकाल भगाया और १८१५ ई० में सम्पूर्ण कुमायुं को अपने राज्य में मिला लिया। चांद राजाओं के समय में भी जैन वणिक इस जिले में पर्याप्त संख्या में रहे प्रतीत होते हैं। वस्तुतः, कुमायुं में साह जाति मध्यकाल में पर्याप्त प्रभावशाली रही है। वर्तमान में इस जाति के कुछ लोग अपने को शाह कहने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लगे हैं और स्वयं को मूलतः राजपूत बताते हैं, राजपूत कन्याओं से विवाह करते हैं और मद्यमांस का भी सेवन करते हैं, किन्तु मुख्यतया वणिकवृत्ति ही करते हैं। यहीं के कुछ अन्य शाह अपने को अग्रवाल वैश्यों का वंशज कहते हैं, उनके गोत्र भी अग्रवालों की भाँति गर्ग, गोयल आदि हैं, सलीमगढ़िया प्रभृति उनकी उपजातियाँ भी अग्रवाल सम्बन्ध की सूचक हैं। दोनों ही प्रकार के इन कुमैया साहों की अब एक पृथक पहाड़ी जाति बन गई है और यह जाति मुख्यतया साहुकारा, व्यापार, व्यवसाय आदि में ही संलग्न रहती आई है। पूर्वकाल में इनका फैलाव पिथौरागढ़ जिले के अन्तर्गत शोर के बमराज्य तक था और इनके कई वंशों की उपाधि चौधरी थी। अल्मोड़ा जिले में हो द्वाराहाट के चौधरी किसी समय बड़े प्रभावशाली थे। चांद राजाओं के राज्यकाल में इन चौधरियों और साहुओं ने उच्च राजकीय पद भी प्राप्त किये और राज्य की प्रभूत सेवायें कीं। ऐसा लगता है कि प्राचीन काल से ही बिजनौर, मुरादाबाद आदि मैदानी जिलों के अनेक अग्रवाल जैनी साहू लोग कुमायु में व्यापार-वाणिज्य के अर्थ अथवा राजाओं के निमन्त्रण पर जाकर बसते रहे। कालान्तर में मैदानी जिलों और वहां रहने वाले साधर्मी अथवा सजातीयों के साथ सम्पर्क विच्छेद हो जाने से वे पहाड़ी जनता के ही अंग बन गये, और शनैः शनैः स्थानीय बहुसंख्या के प्रभाव से जैनधर्म से विमुख होकर शैव-वैष्णवादि बन गये। अल्मोड़ा के दक्षिण में स्थित नैनीताल जिले में तो आज भी जैनीजन पर्याप्त संख्या में निवास करते हैं। इस जिले के मुक्तेश्वर, ढिकौली, उज्जैनी (काशीपुर के निकट प्राचीन गोविषाण जनपद) आदि प्राचीन स्थलों की खुदाई एवं शोध में जैन पुरातत्व मिलने की पूरी संभावना है। स्वयं नैनीताल के प्रसिद्ध नैनादेवी के मन्दिर में श्री उग्रसेन जी तथा अन्य कई सज्जनों ने कुछ वर्ष हुये एक मनोज्ञ जैन तीर्थंकर प्रतिमा देखी थी। बाद में वह वहां नहीं रही और यह बताया गया कि कतिपय अन्य मूर्तियों के साथ वह भी चोरी चली गई है। वैसे वर्तमान में काशीपुर, जसपुर और हलद्वानी में जैन मन्दिर विद्यमान हैं और जिले के नैनीताल, काशीपुर, हलद्वानी, टनकपुर, जसपुर, रामनगर, बाजपुर, गदरपुर, रुद्रपुर, धनौरी आदि प्रमुख नगरों एवं कस्बों में जैनी जन पाये जाते हैं। कृषि फार्मों तथा फैक्ट्रियों आदि के सिलसिले से जिले के देहाती क्षेत्रों में भी कुछ जैनी रहते हैं।

रुहेलखंड

उत्तर प्रदेश राज्य की बरेली कमिश्नरी में बिजनौर, मुरादाबाद, बदायुं, रामपुर, पीलीभीत, बरेलो और शाहजहांपुर नाम के सात जिले हैं। इन सातों जिलों से व्याप्त भूभाग ही १८ वीं शती के मध्य के लगभग रुहेले पठानों के संसर्ग के कारण रुहेलखंड कहलाने लगा। उसके पूर्व लगभग आठ-नौ सौ वर्षों से यही प्रदेश कटेहरिया राजपूतों के सम्बन्ध से कटेहर देश अथवा मुल्क कटेहर कहलाता था। उसके भी पूर्व, प्रायः महाभारत काल से लेकर, वह उत्तर पांचाल अथवा पांचाल देश कहलाता रहा था। यह प्राचीन कालीन पांचाल महाजनपद का उत्तरी भाग था। इस प्रदेश के विभिन्न भागों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में अति प्राचीन काल से जैनों का आवास, जैन सांस्कृतिक केन्द्र, धर्मायतन, तीर्थस्थान आदि रहते आये हैं। वर्तमान में इस कमिश्नरी के जिलों की जैन जनसंख्या निम्न प्रकार है :

जिला	१९६१ की जनगणना	प्रस्तुत डायरेक्टरी के अनुसार १९६७ में
बिजनौर	१२३७ (पु० ५८६, स्त्री ६५१)	१८७०
मुरादाबाद	१०९३ (पु० ५७३, स्त्री ५२०)	१५५४
वदायुं	१४४ (पु० ६६, स्त्री ७८)	४५८
रामपुर	५३७ (पु० २९७, स्त्री २४०)	६५८
बरेली	१९४ (पु० १०६, स्त्री ८८)	१८५
पीलीभीत	५४३ (पु० ५३४, स्त्री ९)	४८
शाहजहांपुर	१७२ (पु० १४२, स्त्री ३०)	३३
योग—	३९२० (पु० २३०४, स्त्री १६१६)	४८०६

इन दोनों प्रकार के आँकड़ों में परस्पर जो अन्तर हैं उनके कारण हैं। प्रथम तो १९६१ के और १९६७ के बीच भारतवर्ष की जनसंख्या में सामान्यतः वृद्धि हुई है और वह जैनों की संख्या में भी हुई है। दूसरे, सरकारी जनगणना में प्रायः सर्वत्र एवं सदैव अनेक जैन हिन्दुओं के अन्तर्गत परिगणित होते रहे हैं, जिसका कारण जनगणना कर्मचारियों की अनभिज्ञता और स्वयं जैनों का प्रमाद होता है। तीसरे, इस डायरेक्टरी में संकलित आंकड़े भी पूर्ण नहीं हैं। उत्तराखंड कमिश्नरी के तीनों जिलों और कुमायुं कमिश्नरी के नैनीताल को छोड़कर शेष तीन जिलों के आंकड़े एकत्रित ही नहीं किये गये। और जिन जिलों के आंकड़े एकत्रित भी किये गये हैं उनमें भी पश्चिमी पाकिस्तान के उन विस्थापित श्वेताम्वर अथवा स्थानकवासी जैन वन्धुओं की संख्या और विवरण वहुधा संकलित नहीं हो पाये हैं। बरेली, पीलीभीत और शाहजहांपुर के आँकड़ों से यह तथ्य स्पष्ट है। तराई क्षेत्रों में जो कृषि का नया विकास हुआ है और अनेक छोटे-वड़े फार्म खुले हैं उनमें तथा अन्य अनेक ग्राभों में भी जैन रहे हो सकते हैं। अस्तु इस डायरेक्टरी में विविक्षित पूरे प्रदेश की जैन संख्या जो १९६१ की जनगणना के अनुसार ४४०२ और डायरेक्टरी के अनुसार ५१६७ आती है तथा पीलीभीत, बरेली और शाहजहांपुर की अतिरिक्त संख्या को जोड़कर ५४४९ आती है, सब मिलाकर छः हजार से कुछ अधिक ही होनी चाहिये।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्षेत्रीय समाज की प्रगति के पथ-चिन्ह

रूहेलखंड-कुमायुं की जैन समाज अपेक्षाकृत अत्यल्पसंख्यक है और इस क्षेत्र के थोड़े से ही नगरों, कस्बों एवं ग्रामों में सीमित है। तथापि, वर्तमान शताब्दी के प्रारंभ से ही अखिल भारतीय जैन समाज की प्रगति में उसका महत्वपूर्ण योगदान रहा है और उसके आधुनिकयुगीन इतिहास की कई ऐसी घटनाओं से घनिष्ट सम्बंध रहा है जो क्षेत्रीय समाज की प्रगति के ज्वलंत पथ-चिन्ह बन गये हैं।

सन् १८९१ में भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा की स्थापना हुई। यह सभा दिगम्बर जैन समाज की सर्वप्रथम अखिल भारतवर्षीय संस्था थी और इसके संस्थापकों में सर्वप्रमुख इसी क्षेत्र के मुरादाबाद निवासी पं० चुन्नीलाल जी तथा मुंशी मुकन्दलाल जी थे। इस महासभा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रारंभिक अधिवेशन सन् १९०० में मथुरा नगर में हुआ था और उसकी कार्यवाही में सक्रिय भाग लेने वाले प्रमुख नेताओं में से एक मुरादाबाद के ही बाबूलाल जी वकील थे।

सन् १९२१ में ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद जी के उद्योग से दिगम्बर जैनों की संयुक्त प्रान्तीय (उ० प्र०) सभा की स्थापना हुई जिसका प्रथम अधिवेशन इस क्षेत्र के बरेली जिले में स्थित अहिच्छत्र जी तीर्थ क्षेत्र पर २२-२४ मार्च, १९२२ ई० को हुआ। अधिवेशन के सभापति देशभक्त वकील झूमनलाल जी एम० ए० थे और अधिवेशन में इस क्षेत्र के प्रायः सभी जैन नेता—रा० ब० साहू जुगमंदरदास नजीबाबाद, रा० ब० द्वारिका प्रसाद नहटौर, श्री कुंजबिहारी लाल जमींदार कंदरकी (मुरादाबाद), बाबूलाल जी वकील मुरादाबाद, अशर्फीलाल जी वकील रामपुर, रतनलाल जी वकील बिजनौर, पं० रघुनाथदास सरनऊ, पं० कुंवरलाल जी इत्यादि—तथा क्षेत्र के विभिन्न स्थानों से लगभग डेढ़ हजार अन्य सज्जन पधारे थे। इस अधिवेशन में पारित कतिपय प्रस्ताव निम्न प्रकार थे :—

(१) यह दि० जै० संयुक्त-प्रांतीय सभा निश्चित करती है कि प्रायः रेशम की तैयारी कीड़ों को मार कर की जाती है। अतः रेशमी वस्त्रों का व्यवहार अहिंसात्मक धर्म विरुद्ध है। ऐसे वस्त्र धार्मिक लौकिक कार्यों में व्यवहार में न लाये जावें। (२) यह सभा ऐसे विवाह को वर्जित करती है जिसमें वर-कन्या की अवस्था में २ वर्ष से कम या २० वर्ष से अधिक अन्तर हो। और इस निर्णय को कार्य रूप में परिणित करने के अर्थ प्रस्ताव करती है कि जनता से निम्न प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर कराये जावें— "मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि ऐसे विवाह में सम्मिलित न होऊँगा जिसमें वर-कन्या की अवस्था में २० वर्ष से अधिक अन्तर हो।" (३) कन्या विक्रय के कुत्सित व्यवहार को यह सभा घृणा की दृष्टि से देखती है और पंचायतों को सम्मति देती है कि कन्या बेचने वाले, खरीदने वाले और उनके दलालों को जाति से पृथक कर दे। (४) यह सभा प्रस्ताव करती है कि दि० जैन शास्त्रों का मुद्रण ऐसे शुद्ध प्रेस में कराया जाय जिसमें सरेस का बेलन काम में न लाया जाता हो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और ऐसे शुद्ध प्रेस को इस प्रांत में खोलने का प्रयत्न किया जावे। (५) यह सभा प्रकट करती है कि अहिंसात्मक धर्म प्रचार और देश की आर्थिक उन्नति के लिये खद्दर का प्रचार अवश्य किया जावे। (६) यह सभा इस प्रांत के सेठ पद्मराज जी रानीवाले, कुंवर दिग्विजय सिंह जी, महात्मा भगवान-दीन जी, श्री चांदमल जी आदि सज्जनों को हार्दिक बधाई देती है कि देश सेवा के लिये जेल के कष्ट धैर्य से सहन करके उन्होंने जैन जाति का मुख समुज्जवल किया, और उन प्रान्तीय जैन महानुभावों को भी धन्यवाद देती है जो वकालत आदि स्वार्थ त्याग करके देश सेवा के पवित्र कार्य में यथाशक्ति भाग लेकर अपना कर्त्तव्य पालन कर रहे हैं।

इस प्रकार प्रान्तीय जैन समाज के प्रतिनिधियों के इस समुदाय ने अहिच्क्षेत्र में हुए अपने प्रथम अधिवेशन में ही यह स्पष्ट रूप से प्रगट कर दिया था कि देश के स्वतन्त्रता संग्राम में तथा उसकी राष्ट्रीय, आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति में तत्कालीन जैन समाज तन-मन-धन से योग दे रही थी। इसके अतिरिक्त इस सभा की स्थापना और उसका यह अहिच्छत्रा अधिवेशन अगले वर्ष (१९२३ में) दिल्ली पंचकल्याणक महोत्सव के अवसर पर स्थापित होने वाली समाज की सुधार प्रधान एवं प्रगतिवादी अखिल भारतीय संस्था—श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद— के पूर्वाभास थे। उक्त परिषद के प्रमुख जन्मदाता भी ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद जी ही थे और उसकी स्थापना एवं प्रगति में भी रूहेलखंड क्षेत्र के जैन नेताओं का प्रमुख योगदान रहा है। परिषद का प्रथम अधि-वेशन सन् १९२४ में मुजफ्फरनगर में हुआ था, किन्तु उस अधिवेशन के अध्यक्ष इसी क्षेत्र के नजीबा-बाद निवासी साहु जुगमंदरदास जी थे। बिजनौर के बा० रतनलाल जी वकील व बा० राजेन्द्र कुमार जी, नजीबाबाद के साहु श्रेयांस प्रसाद एवं साहु शान्ति प्रसाद जी, प्रभृति अनेक सज्जन परिषद के स्थायी स्तंभ रहते आये हैं।

सन् १९६० में श्री उग्रसेन जी, जो उस समय काशीपुर में निवास करते थे, के प्रयत्न से रूहेलखंड-कुमायुं जैन परिषद की स्थापना हुई। इसके सर्वप्रथम अध्यक्ष देशभक्त बा० रतनलाल जी वकील बिजनौर निर्वाचित हुए और कार्यवाहक अध्यक्ष परिषद-परीक्षा बोर्ड के मन्त्री उपरोक्त उग्रसेन जी। उन्हीं के प्रयत्नों से १९६३-६४ में इस क्षेत्र की जैन जनगणना हुई और यह डायरेक्टरी निर्मित एवं प्रकाशित हुई। उक्त क्षेत्रीय परिषद की स्थापना के उपरान्त क्षेत्र के विभिन्न स्थानों की जैन समाजों में शिक्षा संस्थाओं की स्थापना, समाज सुधार एवं सामाजिक संगठन, धर्मायतनों का निर्माण एवं संरक्षण, अहिच्छत्रा तीर्थ की उन्नति, इत्यादि विभिन्न दिशाओं में प्रगति की है।

रूहेलखंड-कुमायुँ क्षेत्र और जैन संस्कृति

जैन संस्कृति के साथ इस क्षेत्र का सम्बन्ध भारतीय इतिहास के प्रायः प्रारम्भ से ही रहा है। वर्तमान कल्पकाल में भरतक्षेत्र में मानवी सभ्यता और कर्मभूमि अथवा कर्मयुग का ऊँ नमः प्रथम तीर्थंकर आदिपुरुष भगवान ऋषभदेव ने किया था जो महादेव थे, प्रजापति थे, स्वयंभू थे और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनु भी थे। अयोध्या में उनका जन्म हुआ था। उन्होंने ही सर्व प्रथम मानवों को असि-मसि-कृषि-शिल्प-वाणिज्य आदि कर्मों की शिक्षा दी, अक्षरज्ञान एवं अंकज्ञान दिया, नगरों का निर्माण किया, देशों का विभाजन किया और राज्य व्यवस्था की। तदनन्तर पुत्रों को राज्य सौंपकर उन्होंने समस्त वैभव एवं परिग्रह का परित्याग करके निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि के रूप में दुर्द्धर तपश्चरण किया जिसके फलस्वरूप केवलज्ञान एवं अर्हन्त अवस्था प्राप्त की और फिर देश-विदेश में विहार करके समस्त लोक के कल्याणार्थ सद्धर्म का अथक उपदेश दिया एवं धर्मतीर्थ का प्रवर्त्तन किया। अपने मुनिजीवन में उन्होंने मध्य-हिमालय के इन पार्वतीय प्रदेशों में तपश्चरण किया और केवल ज्ञान प्राप्ति के उपरान्त इस सम्पूर्ण प्रदेश में 'विहार करके धर्मोपदेश दिया। गढ़वाल का परम धाम बद्रीनाथ जिस पर्वत शिखर पर स्थित है उसके एक ओर 'नर' पर्वत है और दूसरी ओर 'नारायण' पर्वत है। नर पर्वत भगवान आदि देव की तपोभूमि है, नारायण उनकी देशना भूमि है। वह नर से नारायण, आत्मा से परमात्मा हो गये थे, इसी तथ्य के प्रतीक रूप से उक्त शिखरों के ये नाम प्रसिद्ध हुये लगते हैं। स्वयं बद्रीनाथ की मूर्ति को जैनी जन तीर्थंकर प्रतिमा ही जानते मानते रहे हैं और दर्शनार्थ उस धाम की यात्रा भी करते रहे हैं। अन्त में, भगवान वर्तमान रूहेलखंड के मैदानी भागों में होते हुये, कुमायुं-गढ़वाल के पार्वतीय प्रदेशों में विचरते हुये, अनेक शिष्य मुनियों सहित उत्तरीय हिमश्रृंखला को पार करके पर्वतराज कैलास, अपरनाम अष्टापद, पर पहुंचे। उक्त पर्वत-शिखर से ही इन वृषभलांछित, जटाजूटधारी महादेव ऋषभनाथ ने निर्वाण एवं सिद्धत्व लाभ किया। अन्य अनेक मुनियों ने भी भगवान के साथ ही उसी स्थान से निर्वाण प्राप्त किया था। यह कैलास पर्वत पूर्वकाल में भारतदेश की उत्तरी सीमा के भीतर ही अवस्थित था, किन्तु वर्तमान में वह चीनाधिकृत तिब्बत देश में स्थित है। भगवान के निर्वाण का समाचार ज्ञात होते ही उनके ज्येष्ठ पुत्र, भारत के आदिसम्राट एवं प्रथम चक्रवर्ती, महामना भरत जिनके नाम पर ही इस महादेश का नाम भारतवर्ष प्रसिद्ध हुआ इस रूहेलखंड-कुमायुं के मार्ग से ही सपरिवार कैलाश पर्वत पर गये और वहाँ ससमारोह भगवान का निर्वाण पूजोत्सव मनाया। अपनी दिग्विजय के प्रसंग में भी भरत चक्रवर्ती की सेना इन समस्त प्रदेशों में विचरी और उन्हें विजय किया। आचार्यप्रवर जिनसेन स्वामि ने आदिपुराण में इन प्रसांगों का वर्णन निम्न प्रकार किया है:

पर्व १६ श्लोक १५३ में भगवान ने जिन विभिन्न देशों की स्थापना की थी उनमें पांचाल देश (वर्तमान रूहेलखंड) का भी उल्लेख है, यथा "काश्मीरोशीनरानर्त्त वत्स पांचाल मालवा:" आदि।

पर्व २५श्लोक २८७ में भगवान ने सन्मार्ग का उपदेश देने के अर्थ जिन विभिन्न देशों में विहार किया था उनमें भी पांचाल देश का उल्लेख है, यथा · · "पांचाल मालव दशार्ण विदर्भ देशान्, सन्मार्गदेशन परो विजहार धीर:"। और तदनन्तर श्लोक २८८ में कथन किया गया है कि 'इस प्रकार वह भगवान ऋषभदेव जो प्रशान्त चरित थे और तीनों लोकों के गुरु थे, अनेक देशों में बहु-संख्यक भव्यजीवों को प्रतिबोधित करते हुये अन्त में चन्द्रोपम उज्वल, अत्युच्च एवं अपना अनुकरण करने वाले कैलास पर्वत पर पहुंचे (विधुवीध्र मुच्चै:, कैलासमात्मयशसो नुकृति दधानम्)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर्व २९ श्लोक ४० में भरतेश्वर चक्रवर्ती की दिग्विजय के प्रसंग में उसके सेनापति द्वारा पांचाल देश की विजय का वर्णन है, श्लोक ४६ में हिमवान पर्वत के निचले भाग (पादमूल) में भरतेश के विजयी हाथियों के घूमते रहने का उल्लेख है, श्लोक ४८ में चक्रवर्ती के सेनापति के कुलिन्द, कालकूट, किरातविषय और मल्लदेश में विजयार्थ जाने का उल्लेख है। इनमें से कुलिन्द देश तो कुमायुं-गढ़वाल के निचले पहाड़ी भाग की संज्ञा थी, कालकूट संभवतया काली कुमायुं की पहाड़ियों का द्योतक है और किरात मंडल या किरात देश कुमायुं का पूर्वोत्तर भाग था। मल्लदेश से आशय नेपाल का है। आगामी श्लोकों में उल्लिखित गंगा, गोमती, कौशिकी, कालतोया आदि नदियाँ भी इसी पार्वतीय प्रदेश की ओर इंगित करती हैं।

पर्व ३२ श्लोक ७८ में फिर चक्रवर्ती का सेनासहित हिमवन पर्वत के किनारे-किनारे (हिमाद्रितटाव) गमन करने का उल्लेख है। श्लोक ८३-८९ में उसके हिमवत्कूट पर पहुंचने का वर्णन है। श्लोक ९२ में उस हिमवत् पर्वत को अत्यन्त ऊँचा तथा जो साधारण मनुष्यों द्वारा अनुल्लंघनीय है ऐसा बताया गया है। आगे भी श्लोक १३० पर्यन्त भरत द्वारा इस हिमालय के विभिन्न शिखरों की विजय, इस सुरम्य पर्वतराज और उसके विभिन्न प्रदेशों की भूरि-भूरि प्रशंसा, उसे देव, अप्सरा, विद्याधर, किन्नर, नाग आदि का निवास स्थान बताना आदि प्रभूत वर्णन है। यह वर्णन प्रायः वैसा ही है जैसा कि ब्राह्मणीय आदि अन्य ग्रन्थों में हिमालय का बहुधा मिलता है। अतएव इस विषय में कोई सन्देह नहीं है कि उक्त जैन महापुराण में वर्णित हिमवन् प्रदेश यह कुमायुं-गढ़वाल के पार्वतीय प्रदेश ही हैं जो दक्षिण में तराई-भाबर से लेकर उत्तर में कैलाश एवं मानसरोवर पर्यन्त फैले हुये हैं। पुराणकार के आगे के कथन से यह भी स्पष्ट है कि भरतेश्वर उत्तरकाशी जिले के उत्तर में स्थित गंगोत्री और गोमुख नामक स्थलों तक पहुंचे थे। पर्व ३३ में भरतचक्री के पुनः कैलास पर्वत पर जाकर जिनेन्द्र ऋषभदेव का पूजन करने का वर्णन है, स्वयं कैलास पर्वत का भी सुन्दर वर्णन है। इसी पर्व के श्लोक ५६ में कैलास पर्वत का अपरनाम अष्टापद सूचित किया गया है। पर्व४७ में भी महाराज भरत के भगवान का दर्शन करने और उपदेश सुनने के लिये कैलास पर्वत पर जाने का तथा अन्त में उनका निर्वाण होने पर निर्वाणोत्सव मनाने जाने के वर्णन हैं। हरिवंश पुराण (सर्ग ११) में भी पांचाल देश और उसके उत्तरवर्ती इन हिमालयस्थ पहाड़ी प्रदेशों का वर्णन है।

इस प्रकार महापुराण आदि के उपरोक्त उद्धरणों से यह सुस्पष्ट है कि वर्तमान रूहेलखंड तथा कुमायुं-गढ़वाल के साथ जैन धर्म और संस्कृति का घनिष्ट सम्बन्ध भ० ऋषभदेव के समय से ही, अर्थात भारतीय इतिहास के प्रारम्भ काल से ही है।

भ० ऋषभदेव के उपरान्त होने वाले तीर्थंकरों का भी विहार इस भूभाग में हुआ और भरत चक्रवर्ती के पश्चात आने वाले जैन परम्परा के शेष ग्यारह चक्रवर्तियों ने भी अपनी-अपनी दिग्विजय के प्रसंग में इस सम्पूर्ण क्षेत्र को विजय किया। २२ वें तीर्थंकर भ० नेमिनाथ का रूहेलखंड की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भूमि से कुछ विशेष सम्बन्ध रहा दीखता है, क्योंकि जिनप्रभसूरि के विविधतीर्थकल्प के अनुसार इस पांचाल देश की महानगरी शंखावती में, जो बाद में अहिच्छत्रा के नाम से प्रसिद्ध हुई, भगवान नेमिनाथ का प्राचीन तीर्थ था और वहाँ तीर्थंकर नेमिनाथ की प्रतिमा के साथ ही साथ उनकी शासन देवी सिंहवाहिनी अम्बिका देवी की मूर्ति भी प्रतिष्ठित थी ।।

२३ वें तीर्थंकर भ० पार्श्वनाथ की तो यह नगरी ज्ञान कल्याणक भूमि है। भ० पार्श्वनाथ का जन्म ईसा से ८७७ वर्ष पूर्व काशीदेश की वाराणसी नगरी में उरगवंशी काश्यपगोत्री महाराज अश्वसेन की धर्मपत्नी वामादेवी की कुक्षि से हुआ था। भ० पार्श्व बालब्रह्मचारी रहे। कुमारावस्था में ही उन्होंने संसार का त्याग करके जैनेश्वरी दीक्षा ले ली थी। वह बाल्यावस्था से ही अत्यन्त शान्त-चित्त, दयालु, मेधावी एवं चिन्तनशील थे, किन्तु साथ ही अतुल वीर्य-शौर्य के धनी एवं परम पराक्रमी भी थे। उनके मातुल, कान्यकुब्ज नरेश, पर जब एक प्रबल आततायी ने आक्रमण किया तो कुमार पार्श्व तुरन्त सेना लेकर उनकी सहायता के लिए गये और उन्होंने भीषण युद्ध करके शत्रु को पराजित किया और बन्दी बना लिया। कृतज्ञ मामा ने उन्हें साग्रह कुछ दिन अपना अतिथि बनाये रखा। इसी बीच एक दिन वन विहार करते हुए उन्होंने तापसियों का एक आश्रम देखा और एक भयंकर तापसी से एक नाग-नागी युगल की रक्षा की। इसी घटना से भ० पार्श्व को वैराग्य हो गया और आत्मशोधनार्थ तपश्चरण करने के लिए वह वन में चले गये। साधिक चार मास पर्यन्त उन्होंने कठोर साधना की। इस साधना के मध्य कुरुदेश की महानगरी हस्तिनापुर में पारणा करके वह विचरते हुये गंगा के किनारे-किनारे उस स्थान पर आये जो बाद में 'पारसनाथ किला' के नाम से प्रसिद्ध हुआ और वर्तमान में बिजनौर जिले के बढ़ापुर ग्राम के आसपास जिसके भग्नावशेष बिखरे पड़े हैं। यहाँ से आगे चलकर वह उत्तर पांचाल राज्य की राजधानी, जो उस समय पाँचालपुरी, परिचक्रा और शंखावती नामों से प्रसिद्ध थी और बाद में अहिच्छत्रा कहलाई तथा वर्तमान में बरेली जिले की आँवला तहसील के रामनगर नामक कस्बे के बाहर जिसके भग्नावशेष फैले पड़े हैं, के निकटवर्ती भीमाटवी नाम महावन में जा विराजे। यहाँ वह योग धारण करके एक स्थान में कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यानस्थ हो गये। इसी अवस्था में और इसी स्थल पर शंवर नामक एक दुष्ट असुर ने उन पर भीषण उपसर्ग किये। नागराज धरणेन्द्र और यक्षेश्वरी पद्मावती ने उक्त उपसर्ग के निवारण का यथाशक्य प्रयत्न किया। किन्तु शुद्धात्म स्वरूप में लवलीन जिनेन्द्र का तो इन बातों की ओर ध्यान ही नहीं था। फलस्वरूप घातिया कर्मों का क्षय करके उसी समय उन्होंने केवल ज्ञान एवं अर्हन्त पद प्राप्त किया। उनके परमभक्त धरणेन्द्र और पद्मावती ने हर्षोन्मत्त होकर भगवान की पूजा की, और वह दोनों भगवान पार्श्व के परम अनुचर, उनके शासन के रक्षक एवं परम प्रभावक शासन देवता कहलाये। इन्द्रादिक देवों ने आकर इस स्थान में ही प्रभु का ज्ञान कल्याणक अत्यन्त समारोह पूर्वक मनाया। भ० पार्श्व के केवल ज्ञान प्राप्ति और तीर्थोत्पत्ति का स्थल होने के कारण यह भूमि धन्य हुई और जैन धर्म का एक पुनीत धर्मतीर्थ बनी। नागराज (अहि) धरणेन्द्र ने उपसर्ग निवारणार्थ भगवान के सिर के ऊपर जो छत्राकार सहस्त्रफणा मंडप बनाया था उसी के कारण यह नगरी, जो तब तक शंखावती, परिचक्रा, पांचालपुरी आदि नामों से जानी जाती थी, अब अहिच्छत्रा नाम से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लोक प्रसिद्ध हुई। इस घटना के प्रतीकात्मक अंकन के रूप में ही तीर्थंकर पार्श्वनाथ की प्रतिमाएँ सप्तफणी छत्र से मण्डित पाई जाती हैं, किन्हीं प्रतिमाओं में यह छत्र पंचफणा या नवफणा भी होता है और कहीं-कहीं सहस्त्रफणा भी पाया गया है।

उपसर्ग वर्णन

भ० पार्श्वनाथ के इस अभूतपूर्व उपसर्ग का वर्णन पार्श्वपुराण के विभिन्न संस्करणों में प्राप्त होता है। सर्वाधिक विस्तृत वर्णन आचार्य पद्मकीर्ति विरचित अपभ्रंश 'पासणाह चरिउ' में है, जिसका संक्षिप्त सार निम्न प्रकार है:—

कुशस्यलपुर (कन्नौज) पर आक्रमण करने वाले दर्पोद्भट यवनराज को भीषण संग्राम में पराजित करके तथा वन्दी वनाकर अश्वसेननन्दन कुमार पार्श्व ने उक्त राज्य पर अपने मातुल महाराज रविकीर्ति को पुनः स्थापित किया (संधि १२, १३)। उसी समय वसन्त ऋतु का आगमन हुआ और रविकीर्ति ने अपनी कन्या प्रभावती के साथ कुमार पार्श्व का विवाह करने का विचार किया, और इस सम्बन्ध के लिये कुमार ने भी अपनी स्वीकृति दे दी (१३/४-९)। किन्तु इसी वीच कुमार को ज्ञात हुआ कि कुशस्थलपुर के उत्तर-पश्चिम एक योजन दूर भीषण वन में अनेक मिथ्यात्वी तापसी अज्ञान तपों में लीन हैं। कौतुहलवश कुमार उन्हें देखने वहां गये। वहां उनकी मुठभेड़ कमठ नाम के एक उग्र तापसी से हुई जो कि एक बड़े लक्कड़ को पंचाग्नि में डालने जा रहा था। कुमार ने उसे ऐसा करने से रोका और कहा कि उक्त लक्कड़ में एक जीवित सर्प है। तापसी ने विश्वास नहीं किया और क्रोधित होकर तीक्ष्ण कुठार से उक्त लक्कड़ को फाड़ डाला। उसमें से एक विषधर भुजंग निकला किन्तु तापसी के प्रहारों से वह क्षत विक्षत हो चुका था। कुमार ने उक्त मरते हुये सर्प के कान में मन्त्र दिया और वह स्थिर मन से देह का त्याग करके धरणेन्द्र नामक नागदेव की पर्याय को प्राप्त हुआ। तापसी का सवने उपहास किया और वह भी जीव हिंसा के त्याग पूर्वक अनशन करके मरण को प्राप्त हुआ और असुर जातीय देव पर्याय को प्राप्त हुआ। इधर कुमार पार्श्व को संसार की यह असारता देखकर संसार-देह-भोगों से वैराग्य हो गया और उन्होंने तत्काल दीक्षा ले ली (१३/१०-१४)। इस घटना से रविकीर्ति को, राजकुमारी प्रभावती को, महाराज अश्वसेन और माता वामादेवी को अत्यन्त दुःख हुआ। दीक्षा के उपरान्त जगतगुरू परम तपस्वी पार्श्वप्रभु ने परिहारविशुद्धि संयम धारण किया, मौनव्रत से देह की परिशुद्धि की और आठ दिन का उपवास लिया। इस अवस्था में विहार करते हुये वह गजपुर (हस्तिनापुर) पहुंचे और वहां वरदत्त के गृह में पारणा किया (१३/१४-२०)।

'तदन्तर वह तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ, जो तीन दण्ड, तीन शल्य और तीन दोषों से रहित थे, जिनका शरीर १००८ लक्षणों से युक्त था, जो चार संज्ञाओं से मुक्त थे और तीन गुप्तियों से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्त थे, शीलों से समन्वित थे, जिनका शरीर सम्यक्त्व रत्न से विभुषित था, जो क्षोभ और मोह से रहित एवं अनन्त वीर थे, बाईस परीषहों को सहना जिनका स्वभाव था, सोलह कषायों को जिन्होंने सहज ही उखाड़ फेंका था, जो कामरूपी मदोन्मत्त गज के लिये प्रचण्ड सिंह थे तथा प्रचुर कर्मरूपी पर्वत के लिये वज्र थे, जो चार ज्ञानों से विभूषित थे, दोषहीन थे और भट्टारक थे, क्रम से सरित, खेड, नगर, कर्वट, प्रदेश, द्रोणमुह, चत्वर, ग्राम, देश, उद्यान, विचित्र घोष समूह, उत्कृष्ट तथा रम्य पर्वत तथा अन्य स्थानों में विहार करते हुये भीमाटवी नामक विशाल वन में पहुंचे। वह वन नाना जाति के सघन वृक्षों से रमणीक और अच्छादित था, भीषण था, उसमें संचार करना कठिन था, वह अनेक वन्य पशुओं से व्याप्त था और पक्षियों के समूह से भरापूरा था, दुस्सह था और दुष्प्रवेश्य था (१४/१-२)।

उक्त वनस्थली के मध्य भूभाग में समस्त दोषों से रहित पार्श्वप्रभ कायोत्सर्ग मुद्रा में स्थित हो गये। वह मुनीन्द्र ध्यानाग्नि से पूर्ण मन के साथ गिरिवत अविचल हो गये। उनके करतल विस्तृत थे, दृष्टि नासाग्र पर टिकी थी, उनके लिये मणि कांचन धूरिवत थे, शत्रु और मित्र तथा रोष और तोष समान थे, सुख और दुःख में समत्व भाव था, मोक्ष उनका लक्ष्य था और वह शुद्धात्म चिन्तन में लीन थे (१४/३)।

उसी अवसर पर शंबर अपरनाम मेघमाली नाम के असुरेन्द्र का आकाशचारी विमान उधर से निकला, किन्तु पार्श्व प्रभु के ऊपर पहुंचते ही वह अकस्मात स्थगित एवं गतिहीन हो गया। अपने विमान को इस प्रकार अटका देख कर वह असुर अत्यन्त क्रोधित हुआ। विभंगावधि के बल से उसे पार्श्व प्रभु के साथ अपने पूर्वभवों के बैरभाव का ज्ञान हुआ और उन्हें ही अब भी अपने इस पराभव का कारण जानकर वह जैसे भी हो उन्हें नष्ट करने के लिये तत्पर हुआ (१४/४-६)। इन्द्र की आज्ञा से वहां जिनवर के अंगरक्षक के रूप में सौमनस नाम का यक्ष रहता था। उसने असुर को समझाने का भरसक प्रयत्न किया और उपसर्ग से होने वाले दुष्परिणामों का वर्णन किया। किन्तु उस दुष्ट ने उलटे सौमनस की भर्त्सना की और अपने घृणित चिश्चय को कार्यान्वित करने में जुट गया (१४/७-९)।

"सर्व प्रथम वह असुर दोनों हाथों में वज्र लेकर तीर्थंकर के शरीर पर प्रहार करने के लिये झपटा, किन्तु निकट आते ही उनके तप-तेज से संत्रस्त होकर वह शस्त्र उसके हाथ से छूट गया और स्वयं व्याकुल हुआ। तदन्तर उसने अपनी माया से गगनमण्डल पर नाना प्रकार के चित्र-विचित्र मेघों का निर्माण किया और दुस्सह, दारुण, भीषण, प्रवल, गरजता हुआ अति प्रचंड पवन प्रवाहित किया। उस महाभयंकर आंधी ने प्रलयन्कर दृश्य उपस्थित कर दिया, किन्तु देवाधिदेव पार्श्व प्रभु तनिक भी विचलित नहीं हुये (१४/१०-१२)। जब प्रवल, भीषण और दुस्सह ध्वनि से युक्त पवन द्वारा भी प्रभु ध्यान से चलित न हुए तो असुर ने शर, उझसर, शक्ति, सव्वल, मुदगर, मुसठि, कराल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रेवगि, परशु, घन, कनक, चक्र आदि अनेक चमचमाते घातक शस्त्रास्त्र जिनवर के ऊपर चलाये, किन्तु वे उनके शरीर तक पहुंचते-पहुंचते सुरभित कोमल पुष्प मालाओं में परिवर्तित हो जाते थे (१४/१३)। तब असुर ने अनेक मनोहारिणी, लावण्य-रूप और यौवन से परिपूर्ण, समस्त कलाओं में पारंगत अप्सराओं का प्रदुर्भाव किया जिन्होंने नाना कामचेष्टाओं से जिनेन्द्र को ध्यान से विचलित करने का भरसक, किन्तु सर्वथा विफल प्रयास किया (१४/१४)। तदन्तर असुर ने सहस्त्रों ज्वालाओं के तेज से विस्तीर्ण, समस्त दिशाओं को दग्ध करती हुई प्रचंड अग्नि का प्रदर्शन किया (१४/१५,) भयानक अशोष्य, दुस्तर, अत्यन्त विक्षुब्ध समुद्र का सृजन किया (१४/१६), अनगिनत भयंकर, हिंसक पशुओं की रौद्रता से भगवान को भयभीत करने का प्रयत्न किया (१४/१७), श्वापदों के भयंकर उपसर्ग के निष्फल रहने पर उसने विशालकाय एवं अत्यन्त वीभत्स भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी, वैताल आदि की रचना की, किन्तु वे सब भी भगवान पर दृष्टि पड़ते ही स्तब्ध रह गये (१४/१८)। अब उक्त मेघमाली असुर ने अभूतपूर्व भयंकर वृष्टि करने का निश्चय किया। डरावने ढंग से संचार करने वाले अत्यन्त घने कृष्णमेघों से समस्त आकाश व्याप्त हो गया। मेघों की सतत वृद्धि से समस्त पृथ्वी अंधकारमय हो गई। प्रमाण रहित, गर्जन तर्जन करती विपुल भीषण वर्षा ने पृथ्वी को जलमग्न कर दिया। मूसल जैसी स्थूल, असंख्य धाराओ से सात दिन पर्यन्त गिरते रहने वाला वह जलौघ सर्वव्यापी हो गया (१४/१९-२३)। यह भीषण उपसर्ग भी धीर वीर पार्श्व जिनेन्द्र के चित्त को चलायमान करने में सर्वथा असमर्थ रहा। जब जल उनके कन्धों से ऊपर पहुंचने लगा तो धरणेन्द्र का आसन कम्पित हुआ। अवधिज्ञान के बल से उसने तत्काल कारण जान लिया और क्षणमात्र में वह अनेक नागकन्याओं से घिरा हुआ और मंगल ध्वनि करता हुआ उपसर्ग स्थल पर आ पहुंचा। उसने एक विशाल कोमल, सुगन्धित एवं अति सुन्दर कमलपुष्प्य निर्माण किया और उस पर आरुढ़ होकर उक्त अहिराज ने पार्श्वजिन की प्रदक्षिणा की, चरणों में प्रणाम किया और अत्यन्त भक्ति एवं विनयपूर्वक उनको जल से उबार कर उनके चरणों को अपनी गोद में लिया और उनके शिर के ऊपर अपना विशाल फणमंडल छत्राकार फैला दिया। आकाश से गिरते हुये जल का अवरोध करता हुआ और भगवान की देह की उक्त वृष्टि से पूर्णतया रक्षा करता हुआ अहिराज धरणेन्द्र उनके द्वारा पूर्वकृत उपकार का स्मरण करता रहा और स्वयं को धन्य हुआ मानता रहा (१४/२४-२६)। उक्त अवसर पर श्वेतच्छत्र धारिणी कमलासना पद्मावती देवी भी जिनेन्द्र की विजय की माला करों में लिये हुये उनकी विनय भक्ति करती हुई वहां उपस्थित थीं। दुष्ट असुर ने अहिराज को चेतावनी दी, डांटा डपटा, उसपर अनेक शस्त्रों से प्रहार किया और भगवान की सेवा से विचलित करने के अनेक प्रयत्न किये किन्तु उसके समस्त प्रयत्न व्यर्थ गये। शुक्ल ध्यान में लीन स्वयं जिनेन्द्र पार्श्वनाथ पर तो उक्त घोर उपसर्गों का कोई प्रभाव ही नहीं था, प्रत्युत उसी समय उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। वे अर्हन्त केवली हो गये (१४/२७-३०)। तत्काल सुरेन्द्र का आसन कम्पायमान हुआ और वह अपने परिवार तथा चतुर निकाय के अन्य देव देवियों के साथ हर्षित हुआ भगवान का ज्ञान कल्याणक उत्सव मनाने के लिये आ पहुँचा। दुष्ट कमठासुर के मन में भय का संचार हुआ। भीमाटवी को जलमग्न देख, असुर द्वारा उपसर्ग किया गया था यह जानकर इन्द्र उस पर अत्यन्त कुपित हुआ। उसने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपने वज्ररूपी महायुध को गगन में घुमाकर और पृथ्वी पर पटक कर छोड़ा। परिणामस्वरूप असुर का साहस छूट गया, वह दशों दिशाओं में भागा और पूरे संसार में भ्रमण करता फिरा। अन्ततः वह भ० पार्श्वनाथ की ही शरण में आया और सच्चे मन से अपने दुष्कृत के लिये अनुताप करता हुआ उनके चरणों में लोटकर भयमुक्त हुआ। इन्द्र का वज्र भी कृतार्थ हो नभ में चला गया (१५/१-६)। इन्द्र ने भगवान की ज्ञान कल्याणक पूजा की और उसी स्थान में उनके समवशरण की रचना की तथा भक्ति विन्हल होकर उनकी स्तुति की। गजपुर नरेश स्वयंभू ने भगवान के निकट दीक्षा ग्रहण की और वह उनका मुख्य गणधर हुआ। राजकुमारी प्रभावती प्रधान आर्यिका हुई। धरणेन्द्र भगवान का अनुचर यक्ष हुआ और पद्मावती शासनदेवता बनी (१५/७-१२)।''

श्वेताम्बर परम्परा सम्मत आगमों में आचारांग निर्युक्ति को छोड़कर अन्यत्र अहिच्छत्रा विषयक विशेष वर्णन नहीं प्राप्त होता। आंचरांग निर्युक्ति के अनुसार "भ० पार्श्वनाथ प्रव्रजित होकर तपस्या करते हुये एक समय कुरुजांगल देश में पधारे। वहाँ संखावती नगरी के निकटवर्ती निर्जन वन में वह ध्यानारुढ़ स्थित हुए। उनके पूर्वभव के बैरी कमठ नाम के असुर ने घनघोर वृष्टि द्वारा उन्हें जलमग्न करके ध्यान से च्युत करने का अथक प्रयास किया। नागराज धरणेन्द्र उसी अवसर पर भगवान की वन्दना करने के लिए वहाँ आ निकला। इस अकाल मूसलाधार वृष्टि से भगवान की रक्षा करने के लिए उसने उनके सिर के ऊपर अपने फणों का छत्र बनाया और असुर की उसके दुष्कृत्य के लिए घोर भर्त्सना की। असुर पराजित हुआ, उसने धरणेन्द्र से **क्षमा माँगी**, उपसर्ग समाप्त किया और भगवान के चरणों में शीश नवाया। उपसर्ग की उपशान्ति के पश्चात नागराज ने अपनी दिव्य शक्ति से भगवान की बहुत विनय भक्ति और प्रभावना की। कालान्तर में उक्त स्थान में भक्तजनों ने एक उत्तम जिन मन्दिर बनाकर उसमें तीर्थन्कर पार्श्वनाथ की नागफण-छत्रालंकृत प्रतिभा प्रतिष्ठित की। यह तीर्थ अहिच्छत्रा पार्श्वनाथ के नाम से लोक प्रसिद्ध हुआ और निकटवर्ती संखावती नगरी का नाम तभी से अहिच्छत्रा नगरी पड़ा।'

अहिच्छत्रा, इतिहास के आलोक में

२३ वें तीर्थन्कर पार्श्वनाथ एक वास्तविक, ऐतिहासिक्र पुरुष हुए हैं और उनकी जीवन की परम्पराज्ञात घटनायें सत्य हैं, इस विषय में स्वयं जैनों को तो कभी कोई सन्देह हुआ ही नहीं, किन्तु जैनेतर विद्वान, प्राच्यविद और इतिहासकार वर्तमान युग में बहुत समय तक अन्तिम तीर्थन्कर भ० महावीर को ही जैन धर्म का संस्थापक मानते रहे। शनैः शनैः जैन साहित्य, जैनधर्म और जैन इतिहास के तुलनात्मक अध्ययन तथा पुरातात्त्विक खोजों ने उनके मत में परिवर्तन कर दिया और अब प्रायः सब ही देशी एवं विदेशी विद्वानों ने भ० पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता को मान्य कर लिया है। (देखिये हमारी पुस्तक—जैनिज्म दी ओल्डेस्ट लिविंग रिलीजन, पृष्ठ १४-२०)। इसमें भी प्रायः

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोई विवाद नहीं है कि भ० पार्श्वनाथ का निर्वाण सम्मेद शिखर से भ० महावीर के निर्वाण से २५० वर्ष पूर्व हुआ था। महावीर-निर्वाण की तिथि ५२७ ई० पूर्व है और भ० पार्श्व की आयु १०० वर्ष की थी, अतः भ० पार्श्व का जीवनकाल ईसापूर्व ८७७-७७७ निश्चित होता है। ऐसी स्थिति में भ० पार्श्वनाथ के पौराणिक चरित्र में तथ्यांश होने ही चाहिएँ. उनके जीवन की महत्व-पूर्ण घटनायें. तत्सम्बन्धित अधिकांश व्यक्ति और स्थान भी इतिहास सम्मत होने चाहियें। जन्म स्थान वाराणसी नगरी, दीक्षास्थान कुशस्थलपुर अपरनाम कन्नौज नगर, पारणास्थान हस्तिनापुर, उपसर्ग एवं केवल ज्ञान स्थल अहिच्छत्रा नगरी और निर्वाणस्थल सम्मेदशिखर वास्तविक स्थान हैं ही और आज भी वे उन्हीं नामों से प्रसिद्ध हैं। प्रस्तुत प्रसंग में अहिच्छत्रा नगरी ही अत्यन्त महत्व-पूर्ण हैं। किन्तु क्योंकि लगभग एक हजार वर्ष से यह नगरी सर्वथा उजाड़ पड़ी रही आई लोक मानस में वह विस्मृत सी हो गयी। सुदूर दक्षिण में अधिकांशतः रचे जाने वाले पूर्वमध्यकालीन एवं मध्यकालीन दिगम्बर साहित्य में तथा प्रायः उसी काल में गुजरात सौराष्ट्र में रचे जाने वाले श्वेताम्बरी साहित्य में वह प्रायः उपेक्षित रही। और आज भी श्वे० मुनि कल्याण विजय जैसे खोजी विद्वानों को यह लिखना पड़ा कि उपर्युक्त अहिच्छत्रा तीर्थस्थान वर्तमान में कुरुदेश के किसी भूमि भाग में खण्डहरों के रूप में भी विद्यमान है या नहीं इसका विद्वानों को पता लगाना चाहिये।'

इसके यह भी अर्थ नहीं है कि सभी जैन इस तीर्थ को सर्वथा भूल चुके और यह कहाँ है यह बात जानते ही नहीं। उत्तर प्रदेश राज्य की रूहेलखंड कमिश्नरी के बरेली जिले की आंवला तहसील के अन्तर्गत रामनगर कस्बे के निकटवर्ती जंगल में फैले हुये प्राचीन खंडहर उसी अहिच्छत्रा के हैं, इस बात को रूहेलखंड के निवासी जैनीजनों ने जीवित बनाये रक्खा है। रूहेलखंड के इस भाग में चिरकाल से श्वेताम्बरजन प्रायः नहीं रहे और अहिच्छत्रा के आस-पास दिगम्बरों का आवास भी अपेक्षाकृत अति विरल रहा जिसके कारण इस स्थान की प्रसिद्धि कम हुई। तथापि अब से लगभग एक सौ वर्ष पूर्व जनरल कनिंघम की पुरातात्विक पर्यवेक्षण रिपोर्टों में, एटकिन्सन के रूहेलखंड गजेटियर में, फुहरर के ग्रन्थ में तथा नेविल के बरेली जिला-गजेटियर आदि से प्रकट है कि इस स्थान के एक जैन तीर्थ होने की तथा भ० पार्श्वनाथ का उसके साथ सम्बन्ध होने की मान्यता मध्यकाल में बनी रही और अविच्छिन्न रूप से वर्तमान पर्यन्त चली आई है। गत कई दशकों में तो अहिच्छत्रा के खंडहरों की खुदाई, शोध-खोज और भी अधिक हुई और इस स्थान की प्राचीनता का और लगभग दो हजार वर्ष से अहिच्छत्रा नाम से ही प्रसिद्ध रहे आने की बात का पूर्णतया समर्थन हुआ। मध्य काल में रचित दिगम्बरी हरिषेणकृत बृहत्कथाकोश (१०वीं शती), प्रभाचन्द्र कृत आराधनासत्कथा प्रबंध (११वीं शती), नागराजकृत पुण्यास्रवकथाकोश (१४वीं शती), ब्रह्मनेमिदत्तकृत आराधनासार कथाकोश (१६वीं शती), आदि की कई कथाओं में अहिच्छत्रा के उल्लेख आये हैं। इनमें से सम्यक्त्व-उद्योत के दृष्टान्त स्वरूप पात्रकेसरि मुनि (७वीं शती) की कथा पर्याप्त प्रसिद्ध है। १७८४ ई० में कवि आसाराम ने 'अहिच्छत्र पार्श्वनाथ स्तोत्र' की रचना की थी। इन सब कथादिकों से तथा श्वे० जिनप्रभसूरि के विविध-तीर्थ-कल्प (१४वीं शती) से यह बात

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भलो प्रकार सिद्ध है कि दसवीं से अठारहवीं शती पर्यन्त भी जैनी जन इस स्थान से भली प्रकार परिचित थे।

विविध तीर्थकल्प के अहिच्छत्रा कल्प में लिखा है कि जम्बूदीप के भारतवर्ष के मध्यखंड में कुरुजंगल जनपद में शंखावती (संखावई) नाम ऋद्धि-समृद्धियुक्त नगरी थी, वहाँ पार्श्व स्वामी छदमस्थ अवस्था में विहार करते हुए पहुँचे और कायोत्सर्ग तिष्ठे। पूर्वनिबद्ध बैर के कारण कमठासुर ने उनके ऊपर अविच्छिन्न जल बरसाया। चारों ओर जल ही जल हो गया, भगवान आकण्ठ उसमें निमग्न हो गये। नागराज धरणेन्द्र अपनी अग्रमहिषी (पद्मावती देवी) सहित वहाँ आया और उसने अपने सहस्त्र फण से उनके सिर के ऊपर छत्रमंडल बनाकर उपसर्ग का निवारण किया। उस समय से वह नगरी अहिच्छत्रा नाम से प्रसिद्ध हुई। नगर के प्राकार में स्थान-स्थान पर सर्प रूपी धरणेन्द्र की कुंडली के चिन्ह बन गये, जो आज भी उस प्राकार (के भग्नांशों) में दीख पड़ते हैं। वह जल सात कुँडों में भर गया, जो यहाँ विद्यमान हैं। उन कुँडों के जल में स्नान करने वाली मृतवत्सा (जिनके बच्चे जीवित नहीं रहते) स्त्रियों की संतान जीवित रहतीं हैं। उन कुण्डों की मिट्टी से धातुवादी लोग सुवर्ण सिद्ध होना बताते हैं। यहां एक सिद्धरसकूपिका भी दिखाई पड़ती है जिसका मुंह पाषाण सिला से ढका हुआ है। उसे खोलने के लिये एक म्लेच्छ राजा ने बहुत प्रयत्न किया, तीव्र अग्नि जलाकर भी उसे तोड़ना चाहा, किन्तु वह विफल प्रयत्न हुआ। इस नगरी के भीतर, बाहर, निकट व दिशाओं में सवालाख कूप हैं। पार्श्वनाथ की यात्रा करने आये हुये यात्रीगण अब भी जब भगवान का न्हवन उत्सव करते हैं तो दुष्ट कमठ प्रचण्ड पवन और घनघटा आदि द्वारा दुर्दिन कर देता है। मूलचैत्य से नातिदूर सिद्धक्षेत्र में धरणेन्द्र-पद्मावती समन्वित पार्श्वजिनालय बना हुआ है। नगर प्राकार के समीप नेमिनाथ की प्रतिमा से संशोभित, सिद्ध-बुद्ध नामक दो बालक रूपों से समन्वित सिंहवाहिनी अम्बिकादेवी की मूर्ति स्थित है। यहां उत्तरा नाम की एक निर्मल जल से भरी बावड़ी है जिसमें नहाने से और जिसकी मिट्टी का लेपन करने से कुष्ट रोग दूर हो जाता हैं। यहां के धन्वंतरी कूप की पीली मिट्टी से धातु विशेषज्ञ सोना बना सकते हैं। यहां के ब्रह्मकुंड के किनारे उत्पन्न मंडूकपर्णी ब्राह्मी के पत्तों का चूर्ण एकवर्गी गाय के दूध के साथ सेवन करने से बुद्धि और निरोगता बढ़ती है और स्वर गन्धर्व जैसा मधुर हो जाता है। अहिच्छत्रा के उपवनों में प्रायः सभी वृक्षों पर विभिन्न कार्यसाधक बन्दाक उगे मिलते हैं, और इन वनों में जयंती, नागदमनी, सहदेवी, अपराजिता, लक्ष्मणा, त्रिपर्णी, नकुली, सकुली, सर्पाक्षी, सुवर्णशिला, मोहिनी, श्यामा, रविभक्ता (सूर्यमुखी), निर्विर्श्री मयूरशिखा, शल्या, विशल्या आदि अनेक महौषधियां मिलती हैं। अहिच्छत्रा में विष्णु, शिव, ब्रह्मा, चण्डिकादि के मन्दिर तथा ब्रह्मकुण्ड आदि लौकिक (अजैन) तीर्थ भी हैं। यह नगरी कन्ह ऋषि की जन्म भूमि भी है।

जिनप्रभसूरि गुजरात के श्वेताम्बर यति थे और १३३० ई० के लगभग उन्होंने उत्तर प्रदेश के तीर्थों की यात्रा करते हुये इस अहिच्छत्रा तीर्थ की भी यात्रा की थी। उनका कुछ कथन परम्परा से सुना सुनाया, कुछ दन्तकथाओं पर आधारित और बहुत स्वयं देखा हुआ है। वर्तमान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अहिच्छत्रा के विषय में पुरातात्विक शोध-खोज से जो कुछ ज्ञात है और जो कुछ वर्तमान है उससे इस विषय में तनिक भी सन्देह नहीं रहता कि उन्होंने इसी अहिच्छत्रा की यात्रा की थी। तदुपरान्त श्वेताम्बर यात्री इधर आये नहीं लगते, इसी से वे इसे भूल गये। आसपास के निवासी दिगम्बरों ने ही उसे धर्मतीर्थ बनाये रक्खा।

अहिच्छत्रा नगर का ध्वंस १००४ ई० के कुछ काल उपरान्त ११वीं शती ई० में ही हो गया लगता है, क्योंकि उक्त वर्ष का एक शिलालेख ही वहां से प्राप्त अन्तिम शिलालेख है। उसी समय के लगभग जैन महाकवि वाग्भट ने इसी नगर में अपना सुन्दर संस्कृत ग्रन्थ; 'नेमिनिर्वाण काव्य', रचा था, जैसा कि उक्त काव्य की अन्त्य प्रशस्ति के एक पद्य—

अहिच्छत्र पुरोत्पन्न प्राग्वाट कुल शालिनः।
छाहडस्य सुतश्चक्रे प्रबन्धं वाग्भट्टः कविः॥

से प्रगट है (देखिये जैन सन्देश-शोधांक १८, पृष्ठ २८०-२८२)। यह जैन कवि वाग्भट प्रसिद्ध आयुर्वेदाचार्य वाग्भट से भिन्न हैं, जो सिन्धुदेश के निवासी थे।

छठीं-सातवीं शती ई० में स्वामि पात्रकेसरि ने, जो मूलतः एक प्रकाण्ड ब्राह्मण विद्वान थे, इसी अहिच्छत्रा के जिनालय में पद्मावतीसमन्वित फणमंडलालंकृत भ० पार्श्वनाथ की प्रतिमा के दर्शन करके अपनी न्यायशास्त्र विषयक शंका का समाधान प्राप्त किया था और सम्यग्दृष्टि प्राप्त की थी। तभी उन्होंने अपने सुप्रसिद्ध पात्रकेसरिस्तोत्र की रचना की थी। सातवीं शती में ही, लगभग ६३०ई० में, चीनी यात्री हुएनसांग ने इसी अहिच्छत्रा की यात्रा की थी। उसने इसका नाम 'ओहि-चितालो' लिखा है, जो उस नाम का चीनी रुपान्तर है। उस समय यह एक समृद्ध नगर था। उस समय यहां बौद्ध स्तूप और कई बौद्ध विहार थे, जैनों और शैवादिकों के भी कई मन्दिर थे और उन लोगों की यहां बहुतायत थी। इस यात्री ने भी यहां के कुंडों और कूपों का वर्णन किया है। उसने यह भी लिखा है कि जब महात्मा बुद्ध इस नगर में आये थे तो यहां एक नागराज ने उनके ऊपर अपने फण की छाया की थी और यह कि उसी से इस स्थान का नाम अहिच्छत्रा पड़ा। किन्तु इस [illegible]न का अन्य कोई साहित्यिक या पुरातात्विक आधार नहीं है। पार्श्वनाथ सम्बन्धी अनुश्रुति को ही बौद्धों ने यह रूप दे दिया लगता है और इसे या तो हुएनसांग ने स्वयं घड़ा है अथवा सुनी सुनाई स्थानीय बौद्ध किंवदन्ती के आधार पर लिखा है।

इसी प्रकार उत्तर काल के स्थानीय शेव-वैष्णवादि में यह किम्बदंती चल पड़ी कि कौरव-पाडवों के युद्धविद्यागुरु द्रोणाचार्य का अनुचर 'आदि' नाम का एक अहीर था। एक दिन वह जंगल में पड़ा सो रहा था और नाग उसके ऊपर फण की छाया किये हुये था। द्रोण ने यह दृश्य देखा और भविष्यवाणी की कि यह व्यक्ति राजा होगा। जब द्रोण ने उत्तर पांचाल राज्य जीता तो उस अहीर को अपने प्रतिनिधि के रूप में उसका राज्य सौंप दिया। इस आदि राजा के नाम से ही यहां का प्राचीन किला आदिकोट कहलाया और यह स्थान आदिक्षेत्र या अहिक्षेत्र अथवा अहिच्छत्रा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहलाया। किन्तु इस किंवदन्ती का भी कोई साहित्यिक या पुरातात्विक अन्य आधार नहीं है। पार्श्व सम्बन्धी जैन आनुश्रुति को ही अपनी-अपनी परम्परा के साथ जोड़ने के लिये यह कहानियां घड़ी गईं लगती हैं। महाभारत ग्रन्थ में अहिच्छत्रा का नमोल्लेख अवश्य हुआ है किन्तु उसके नामकरण का कोई कारण अथवा आदि अहीर के प्रसंग का कोई संकेत भी वहां नहीं है। महाभारत ग्रन्थ के मूल दशसहस्त्रीरूप की रचना भी ईस्वी सन् के प्रारम्भ से दो-एक शती पूर्व ही हुई मानी जाती है, भले ही उसमें उसके हजार बारह सौ वर्ष पूर्व की घटनाओं का वर्णन है। अतएव पार्श्वसम्बन्धी अनुश्रुति और उसके आधार पर नगर का अहिच्छत्रा नाम उपलब्ध महाभारत की रचना के समय भी लगभग छः सात सौ वर्ष पुराना हो चुका था। उस समय भी वह इसी नाम से प्रसिद्ध एक समृद्ध राजधानी थी। स्वभावतः महाभारतकार ने उसका इस नाम से उल्लेख किया।

हुएनसांग के समकालीन सम्राट हर्षवर्द्धन के साम्राज्य में अहिच्छत्रा एक भुक्ति (सूबा) थी। उसके पूर्व, गुप्त साम्राज्य की भी यह एक महत्वपूर्ण भुक्ति रही थी और उसका शासक एक कुमारामात्य होता था। सम्राट समुद्रगुप्त ने ३५० ई० के लगभग अहिच्छत्रा के नागनरेश अच्युतनन्दि को पराजित करके उसके राज्य को अपने साम्राज्य में मिलाया था। गुप्तकाल का एक शिलालेख अहिच्छत्रा के कोत्तरिखेड़ा नामक टीले से प्राप्त हुआ है जो उस काल में उस स्थान पर स्थित भ० पार्श्वनाथ के मन्दिर के एक वेदिकास्तम्भ पर उत्कीर्ण है और जिसमें महाचार्य इन्द्रनंदि के शिष्य महादरि के द्वारा पार्श्वपति के मन्दिर में दान देने का उल्लेख है। गुप्तकाल में इस नगर में, विशेषकर उसके कोत्तरिखेड़ा क्षेत्र में, कई जिनायतन थे, जिनमें से कुछ उसी काल में बने और कुछ और भी प्राचीन काल से चले आते थे। वहां एक प्राचीन जैन स्तूप भी था। ऐसा लगता है कि यह स्थान हो इस नगर का मुख्यतः जैन केन्द्र था और संभवतया उक्त स्तूप उस स्थान पर ही निर्मित किया गया था जहां भ० पार्श्वनाथ पर उपसर्ग हुआ था, उन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हुआ था और उनका प्रथम समवशरण रचा गया था। यहां के एक प्राचीन मन्दिर की एक वेदी के सम्बन्ध में तो एक पुरानी किम्वदंती यह चली आती है कि उसे रातोरात देवताओं ने बना दिया था। यह अनुश्रुति अब से सौ-डेढ़ सौ वर्ष पूर्व भी स्थानीय लोगों में प्रचलित थी और कनिंघम आदि पिछली शती के अंग्रेज लेखकों ने भी उसका उल्लेख किया है। इसी वेदो में स्थित प्राचीन जिनप्रतिमा को ही संभवतया वर्तमान में 'तिखालवाले बाबा' कहते हैं।

समुद्रगुप्त द्वारा पराजित अच्युतनाग ने अथवा उसके किसी पूर्वज ने अहिच्छत्रा के अन्तिम मित्रवंशी नरेश से यह राज्य हस्तगत किया लगता है। इन नरेशों का, जिन्हें प्रायः सामान्यः 'मित्र राजे' नाम दिया जाता है, अहिच्छत्रा पर मौर्य साम्राज्य के अन्तिम दिनों, ईसापूर्व ३री शती के अन्त के लगभग से ही, स्वतन्त्र राज्य था। २री शती ई० में लगभग सौ-सवा सौ वर्ष इन्हें कुषाण सम्राटों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी, तदनन्तर ये फिर स्वतन्त्र हो गये। किन्तु इस काल में भी यहां के राजे जैन धर्म के प्रश्रयदाता रहे थे, यह बात उन अनेक तीर्थंकर प्रतिमाओं से सिद्ध होती है जिनकी प्रतिष्ठा उन ९२ उत्कीर्ण लेखों के अनुसार सन् ईस्वी ९६ से १५२ के बीच हुई थी। इन मूर्तियों में भी अधिकतर पार्श्वनाथ और नेमिनाथ की ही हैं। उस समय यहां ईंटों से निर्मित एक

C 274

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राचीन जैन स्तूप भी था। यह स्तूप इस स्थान के मुख्य पार्श्व जिनालय के पूर्व की ओर स्थित था और एक अपेक्षाकृत छोटा जिन मन्दिर उक्त बड़े मन्दिर के उत्तर की ओर स्थित था। कोत्तरिखेड़े की खुदाई एवं शोध-खोज में कुषाणकालीन उपरोक्त मन्दिरों, मूर्तियों, स्तूप आदि के अवशेष मिले हैं। कुछ विद्वानों ने इस कोत्तरिखेड़ा को कोट्टारि या कुटारी खेड़ा लिखा है। उसी कुषाणकाल की इसी क्षेत्र में प्राप्त एक यक्षमूर्ति पर नगर का 'अहिच्छत्रा' नाम २री शती ई० को लिपि में स्पष्ट रूप से लिखा मिला है।

ऐसा लगता है कि दूसरी शतो ई० के उत्तरार्ध में इस अहिच्छत्रपुर का राजा ईक्ष्वाकुवंशी, काण्वायनगोत्री पद्मनाभ था जो जैन धर्मावलम्बी था। जब उसके राज्य पर एक प्रबल शत्रु ने आक्रमण किया तो उसने अपने दोनों पुत्रों और छोटी बहिन को अमूल्य पारवारिक रत्नों सहित ४० विश्वस्त सेवकों की सुरक्षा में दक्षिण भारत में भेज दिया। यह दोनों कुमार भी, जो दद्दिग और माधव नाम से प्रसिद्ध हुये, परम जिनभक्त थे और इन पर पद्मावतीदेवी की कृपा थी। कर्णाटक देश में पहुंचने पर इन्हें काणरगण के आचार्य सिहनन्दि के दर्शन प्राप्त हुये। उक्त गुरू के आशीर्वाद, सहायता और उपदेश से उक्त राजकुमारों ने १८८ ई० में गंगवाड़ि राज्य की स्थापना की। मैसूर का वर्तमान राज्यवंश उन्हीं की परम्परा में है। यह गंग राज्यवंश अत्यन्त दीर्घजीवि रहा और प्रायः सदैव जिनभक्त बना रहा। मैसूर राज्य में प्राप्त अनेक शिलालेखों से उक्त गंगवंश की अहिच्छत्रा के इन राजकुमारों द्वारा स्थापना किये जाने के वर्णन मिलते हैं।

इस घटना के भी लगभग ४०० वर्ष पूर्व (ईसा पूर्व २री शती में) अहिच्छत्रा का राजा आषाढ़सेन था, जो भागवत और वैहिदरी का पुत्र, वंगपाल और तेवणी का पौत्र तथा अहिच्छत्रा के ही राजा शोनकायन का प्रपौत्र था। यह आषाढ़सेन भी जैन था और इसने अपनी बहिन गोपाली के पुत्र, कौशांबी नरेश बहसतिमित्र के राज्य में स्थित पभोसा के जैन तीर्थस्थान पर मुनियों के लिये गुफायें बनवाई थीं—वहीं से उसके दान का उल्लेख करने वाला शिलालेख मिला है, जिसमें उसके वंश का परिचय तथा अहिच्छत्रा से उसका सम्बन्ध दिया हुआ है। संभवतया आषाढ़सेन का पुत्र या वंशज वह राजा वसुपाल था जिसने अहिच्छत्रा में प्राचीनकाल में भ० पार्श्वनाथ का मन्दिर बनवाया बताया जाता है।

इस प्रकार मौर्य काल तक अर्थात भ० पार्श्वनाथ के निर्वाण की ५वीं-६ठीं शती तक अहिच्छत्रा की प्राचीनता और उसके साथ जैनों का सम्बन्ध इतिहास प्रसिद्ध है।

नंदों और मौर्यों के समय में यह प्रदेश मगध राज्य का अंग था, किन्तु उसके पूर्व उत्तर-पांचाल की राजधानी इस अहिच्छत्रापुरी में स्वतंत्र राजे राज्य करते थे। इस बात की पूरी संभावना है कि लगभग ईसा पूर्व १०वीं शती से ईसापूर्व ५वीं शती पर्यन्त इस स्थान में नाग राजाओं का राज्य था और भ० पार्श्वनाथ के समय में इस नगर का राजा नागराज धरणेन्द्र था और उसकी अग्रमहिषि यक्षकन्या पद्मावती थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वस्तुतः यक्ष, भृक्ष, असुर, दैत्य, नाग, किन्नर, गन्धर्व इत्यादि' भारतवर्ष के विभिन्न भागों में निवास करने वाली अति प्राचीन मनुष्य जातियां थीं। कालदोष से वह जातियां समाप्त हो गईं अथवा नवागत-नवोदित जातियों में विलीन हो गईं और उनकी स्मृति ही शेष रह गई। क्योंकि अपने समय में उन्होंने सभ्यता, भौतिक संस्कृति, विज्ञान आदि में अत्यधिक उन्नति कर ली थी, लोक स्मृति में वे अनेक चमत्कारी शक्तियो से युक्त रही समझी जाती रहीं, और इसीलिये संभवतया उत्तर काल के जैन, ब्राह्मण, बौद्ध आदि पुराणकारों ने उन्हें अलौकिक शक्ति सम्पन्न देवयोनि के जीव प्रतिपादित कर दिया। ऋग्वेदादि से पता चलता है कि जब वैदिक आर्यशक्ति का इस देश में उदय हुआ और उत्तरी भारत में उक्त आर्यों ने फैलना प्रारम्भ किया तो उन्हें यहाँ के उक्त पूर्व निवासियों के साथ पग-पग पर घोर संघर्ष करना पड़ा। इन वैदिक आर्यों ने अपने उक्त शत्रुओं को दास, दस्यु, आदि घृणासूचक संज्ञायें दीं। इस रूहेलखंड या उत्तरपांचाल प्रदेश पर आर्यों के पौरव-वंश की भारत शाखा की त्रित्सु उपशाखा के क्षत्रियों ने सर्वप्रथम अपने पैर जमाये थे। इस वंश के दिवोदास और सुदास को शंबर नाम के एक दुर्दमनीय असुरनरेश से लोहा लेना पड़ा था। उक्त दैत्यराज शंबर असुर के ९९ दृढ़ दुर्ग, जो अष्टधातु के बने बताये जाते हैं, रूहेलखंड की तराई और भावर में तथा कुमायुं-गढ़वाल की पहाड़ियों में फैले हुये थे। दिवोदास और सुदास ने उक्त दुर्गों पर सैकड़ों बार आक्रमण किया। शनैः शनैः इन आर्य क्षत्रियों की शक्ति बढ़ती गई और यक्ष, असुर नाग आदि जातियां तराई के बीहड़ बनों और हिमालय के पार्वतीय प्रदेशों में सिमटती गईं। प्रारम्भ में यक्षों का प्रभुत्व था, फिर असुरों का हुआ, तदनन्तर नागों का हुआ और उनके बाद किरातों और किन्नरों का हुआ। अन्त में इन पार्वतीय प्रदेशों में खस-कुणिंदों का प्रभुत्व स्थापित हो गया। बचे खुचे नाग, यक्ष, असुर आदि ने तराई के बनों में शरण ली। यक्ष और असुर तो महावीर और बुद्ध के समय तक समाप्तप्रायः हो गये, किन्तु नाग जाति फिर से भारतवर्ष के विभिन्न भागों में फैल गई और अनेक स्थानों में सत्तारूढ़ हुई। नागों का अस्तित्व तो गुप्तकाल के कुछ उपरान्त भी बना रहा। अस्तु, आदि अहीर वाली किम्बदन्ती में यदि कुछ तथ्य है तो इतना ही शायद है कि जब द्रोणाचार्य ने अपने शिष्यों, हस्तिनापुर के पांडव एवं कौरव राजकुमारों, की सहायता से अपने पूर्व किन्तु अभिमानी मित्र, पांचाल नरेश पृषत् के पुत्र एवं उत्तराधिकारी राजा द्रुपद को पराजित करके पांचाल देश के दो भाग किये, और दक्षिण पांचाल (राजधानी काम्पिल्य) को द्रुपद को लौटाकर, उत्तर पांचाल और उसकी राजधानी परिचक्रा (पांचालपुरी या शंखावती) पर अपना अधिकार रक्खा तो उसने अपने अनुचर आदि को यहां अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। आदि संभवतया कोई यदुवंशी राजकुमार था जिसने अपने राज्य और सगोत्रियों का किसी कारण से परित्याग करके विपन्नावस्था में इस प्रदेश में शरण ली थी और द्रोण का आश्रय प्राप्त किया था। कुछ काल तक आदि और उसके वंशजों ने यहां राज्य किया, तदुपरान्त उनका उच्छेद करके नागों ने यहां अपनी सत्ता स्थापित की। पार्श्वनाथ के समय में धरणेन्द्र नाम का नाग यहां का राजा था। उसने किसी पुराने यक्ष सर्दार की कन्या पद्मावती से विवाह किया। जब पार्श्वकुमार कान्यकुब्ज नगर में थे तो शायद यह दम्पति अकेले यात्रा करते हुये कमठ नामक एक दुष्ट तापसी के कोपभाजन बन गये, जिसने छल से इन्हें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विवश बन्दी बनाकर इनका वध करने का उपक्रम किया। वीर एवं दयालु पार्श्वकुमार ने इन्हें उस दुष्ट आततायी के बन्धन से छुड़ाकर अपना चिरउपकृत बना लिया। संभव है, वह कमठतापसी छद्मवेष में शंबर नाम का असुर सर्दार हो। यह ऋग्वेद वाला शंबर नहीं था, किन्तु उसका वंशज था और शायद कुलपरम्परा से इस वंश के असुर सर्दार की उपाधि 'शंबर' रहती आयी हो, इसी से उसका शंबर नाम से जैन अनुश्रुतियों में उल्लेख हुआ। उस असुर का मूल निवास स्थान भी तराई के यह भयंकर बन ही रहे प्रतीत होते हैं, जिनके एक भाग का नाम भीमाटवी था। संयोग से उस वन में विचरते हुये उस असुर ने पार्श्व मुनि को ध्यानारुढ़ देखा और उन्हें अपने पूर्व पराभव एवं अपमान का कारण जानकर उन पर नाना प्रकार के उपसर्ग करने प्रारम्भ किये। वन में आग लगा देना, अस्त्र-शस्त्रों से प्रहार करना, अनेक प्रकार उधम मचाना जब सब व्यर्थ हुआ तो उसने किसी नदी या जलाशय का बांध तोड़कर जलप्लावन किया, कृत्रिम वर्षा यदि वह कर सकता होगा तो वह भी की। उसी समय निकटवर्ती शंखावती के नागराज (अहिराज) धरणेन्द्र और उसकी प्रिया पद्मावती को भी अपने उपकारी एवं पूज्य भगवान के निकटवर्ती भीमाटवी में आने का समाचार मिला। वह तुरन्त उनके दर्शनार्थ सपत्नीक वहां पहुंचा। शंबर असुर के कुकृत्य को देखकर वह कुपित हुआ। वह भी विद्या-बुद्धि बल में उक्त असुर से कुछ अधिक ही था, अतएव उसने उसे पराजित किया, उसकी भर्त्सना की और उसे भगवान से क्षमा मांगने पर विवश किया। साथ ही जलप्लावन से भगवान को अंक में लेकर बाहर निकला और उनके शिर पर भी अपने नाग ध्वजांकित छत्र से छाया की। उपसर्ग दूर हुआ, भगवान को केवलज्ञान हुआ। धरणेन्द्र पद्मावती उनके परम भक्त, उपासक और प्रभावक बने। भगवान के समवशरण की सभा के भी मुख्य प्रबन्धक, व्यवस्थापक और प्रचारक वही थे। भगवान का लोकोपकारी दिव्य उपदेश सुनने के लिये आने वाले भव्य जनसमूह का आतिथ्य भार भी उन्होंने उठाया। और इन्हीं सब सुकृत्यों के कारण वह दम्पति परम्परा अनुश्रुति में भगवान पार्श्व के शासन-देवता और उनके शासन के रक्षक रूप में अमर हुये। इतना ही नहीं, मनुष्य से ऊपर उठाकर उन्हें देव-देवी बना दिया गया। पौराणिक कथनों की पौराणिकता निकालकर शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर यह सब कुछ प्रायः इसी प्रकार घटित हुआ लगता है। कई विभिन्न नामों और नामरूपों वाली तथा नौ-नौ बार बसने-उजड़ने वाली यह अहिच्छत्रा महानगरी और नगरी न रहने पर भी जहां वह बसी थी वह भूमि और जिस प्रदेश में वह रही वह पांचाल या रुहेलखंड प्रदेश भी इस घटना के कारण धन्य हुआ और कम से कम भ० पार्श्व के उपासक जैनों का पुनीत तीर्थस्थल बना।

वैसे तो तीर्थंकर पार्श्वनाथ सम्पूर्ण विश्व के अहेतु परमबन्धु थे, अतएव उनके जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना का स्मारक होने से यह अहिच्छत्रा मानव मात्र का तीर्थधाम है और अपने को भ० पार्श्व का उपासक एवं अनुयायी कहने वाले जैनी मात्र का, बिना किसी साम्प्रदायिक भेदभाव के, परम पुनीत एवं वन्दनीय तीर्थस्थल है। तथापि यह भी एक तथ्य है कि इसके भगनावशेषों में प्राप्त समस्त जिन प्रतिमायें दिगम्बर हैं और इस तीर्थ को जीवित बनाये रखने और चिरकाल से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्तमान पर्यन्त उसकी रक्षा करते रहने का श्रेय भी मुख्यतः रूहेलखंड-कुमायुं के बरेली, रामपुर, मुरादाबाद, नैनीताल आदि जिलों के निवासी दिगम्बर जैनों को ही है। उन्होंने इस तीर्थ की उन्नति और प्रबन्ध के लिये एक तीर्थक्षेत्र कमेटी भी बनाई हुई है। इन बन्धुओं के सद्प्रयत्नों का अनुमान इस तीर्थ के वर्तमान रूप के साथ उसके उस रूप की तुलना करने से सहज ही लगाया जा सकता है जो सन् १९१३ में दिगम्बर जैन डायरेक्टरी के साथ बम्बई से प्रकाशित 'श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन यात्रा दर्पण' पुस्तक के पृष्ठ २ पर लिखा मिलता है, यथा 'श्री अतिशय क्षेत्र, अहिक्षतजी सहारनपुर और लखनऊ के बीच रेलवे स्टेशन आंवला नाम का है। यहां से अहिक्षताजी ६ मील हैं। गांव का नाम रामनगर है। इस क्षेत्र पर श्री पार्श्वनाथ भगवान को तप के समय कमठ के जीव ने बहुत बड़ा उपसर्ग किया था और श्री भगवान को केवल ज्ञान हुआ था। हर साल चैत्रवदी ८ से १२ तक बड़ा मेला होता है। यात्रियों के ठहरने को रामनगर से बाहर एक बड़ी धर्मशाला है। वहां एक मकान में चरणपादुका हैं और यही स्थान अहिक्षतजी कहलाता है। गांव में एक माली के घर में जिनप्रतिमा भी विराजमान है।, इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि उपरोक्त मेले की परम्परा भी कम से कम लगभग दो सौ वर्ष से मिलती है जैसा कि कनिघम आदि के कथनों तथा कवि आसाराम विरचित अहिछित-पार्श्वनाथ स्तोत्र (१७८५ ई०) से पता चलता है, वैसे १४वीं शती के जिनप्रभसूरि भी अहिच्छत्रा के वार्षिक मेले की ओर संकेत करते हैं। यह ध्यातव्य है कि १८वीं शती ई० के उत्तरार्ध में, रूहेले पठानों के शासनकाल में भी, जिनकी प्रारंभिक राजधानी आंवला में थी और अहिच्छत्रा के किले का जीर्णोद्धार करने का भी जिन्होंने विफल प्रयत्न किया था, यह जैन तीर्थ जीवित बना रहा।

पारसनाथ किला

ऐसा प्रतीत होता है कि अहिच्छत्रा से विहार करके तीर्थंकर पार्श्वनाथ निकटवर्ती बिजनौर जिले के अन्तर्गत उस स्थान पर पहुंचे जो चिरकाल से 'पारसनाथ किला' नाम से लोक प्रसिद्ध रहता आया है। वहां उनका समवशरण तो आया ही लगता है, केवल ज्ञान के पूर्व हस्तिनापुर से पारणोपरान्त विहार करके अहिच्छत्रा की भीमाटवी में पहुंचने के पूर्व भी वह कुछ समय इस स्थान पर तिष्ठे और तपस्या की थी। अतएव यह उनकी तपोभूमि और देशनाभूमि रही प्रतीत होती है।

बिजनौर जिले के नगीना नामक कस्बे के उत्तर पूर्व ९ मील बढ़ापुर नाम का छोटा सा कस्बा है, जिसके ३ मील पूर्व दिशा में किसी अति प्राचीन बस्ती के खंडहरों से युक्त कई टीले हैं। ये टीले दो-डेढ़ वर्ग मील के क्षेत्र में फैले हैं और ये खंडहर ही 'पारसनाथ किला' नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें से मुख्य बड़े टीले पर एक सुदृढ़ प्राचीन दुर्ग के भग्नावशेष प्राप्त हुये हैं और विशेष रूप से यह किला ही पारसनाथ किला कहलाता रहा है। इस स्थान की व्यवस्थित रूप से पुरातात्विक शोध-खोज तो अभी नहीं हुई है, किन्तु जितनी कुछ भी हुई है उसके फलस्वरूप

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यहां से अनेक खडित-अखंडित तीर्थन्कर प्रतिमाय, कलापूर्ण तीर्थंकर पट्ट, मानस्थंभ, जिन मूर्तियों से अलकृत दरवाजों के सिरदल, तथा अन्य अनेक कलाकृतियां प्राप्त हुई हैं। एकाकी तीर्थन्कर प्रतिमाओं में भगवान पार्श्वनाथ की एक विशालकाय भग्न प्रतिमा है जो बढ़ापुर गाँव में प्राप्त हुई थी, तथा तीर्थन्कर ऋषभदेव, संभवनाथ, चन्द्रप्रभु, शान्तिनाथ, नेमिनाथ और महावीर की भी प्रतिमायें हैं। एक खन्डित किन्तु अत्यन्त कलापूर्ण शिलापट्ट पर केन्द्र में एक तीर्थन्कर पद्मासनस्थ हैं। उनके बायें ओर कोष्ठक में दो खड्गासन तीर्थन्कर प्रतिमायें हैं जिनमें से एक सप्तफणालंकृत है अतएव निश्चित रूप से तीर्थंकर - पार्श्वनाथ की प्रतिमा है। दूसरी संभव है नेमिनाथ की हो। दायें भाग में भी उसी प्रकार दो प्रतिमायें होंगी, किन्तु वह भाग टूट गया है। पूरा पट्ट पंचजिनेन्द्र-पट्ट अथवा पंच-बालयति-पट्ट रहा होगा। एक अन्य अत्यन्त कलापूर्ण पट्ट पर मध्य में कमलांकित आसन पर भ० महावीर विराजमान हैं, उनके एक ओर नेमिनाथ की तथा दूसरी ओर चन्द्रप्रभु की खड्गासन प्रतिमायें हैं। उत्फुल्ल कमलों से मन्डित प्रभामंडल, शिर के ऊपर छत्रत्रय, आजू-बाजू सुसज्जित गज़युगल, कल्पवृक्ष, चौरीवाहक, मालावाहक, पीठ पीछे कला पूर्ण स्तम्भ, कुबेर, अम्बिका आदि से समन्वित यह मूर्त्तान्किन अत्यन्त मनोज्ञ एव दर्शनीय हैं। पट्ट के पादमूल में एक पंक्ति का लेख भी है— 'श्री विरद्धमान सामिदेव सम १०६७ राणलसुत भरत प्रतिमा प्रठपि'। लेख की भाषा अपभ्रष्ट संस्कृत अथवा प्राकृत जैसी है और लिपि ब्राह्मी है। प्रो० कृष्णदत्त जी बाजपेयी ने इसे विक्रम संवत् १०६७ अर्थात सन् १०१० ई० का अनुमान किया है। किन्तु लेख को देखते हुये ऐसा प्रतीत होता है कि संभव है वह भगवान महावीर का संवत्—महावीरनिर्वाण संवत् हो, जिसके अनुसार यह लेख एवं प्रतिमापट्ट सन् ५४० ई० का होना चाहिये। लेख की भाषा और लिपि भी ११वीं शती की न होकर गुप्तोत्तर काल, ६ठीं-७वीं शती, की जैसी प्रतीत होती हैं। इस स्थान से गंगा-यमुना की मूर्ति युक्त द्वार की चौखट

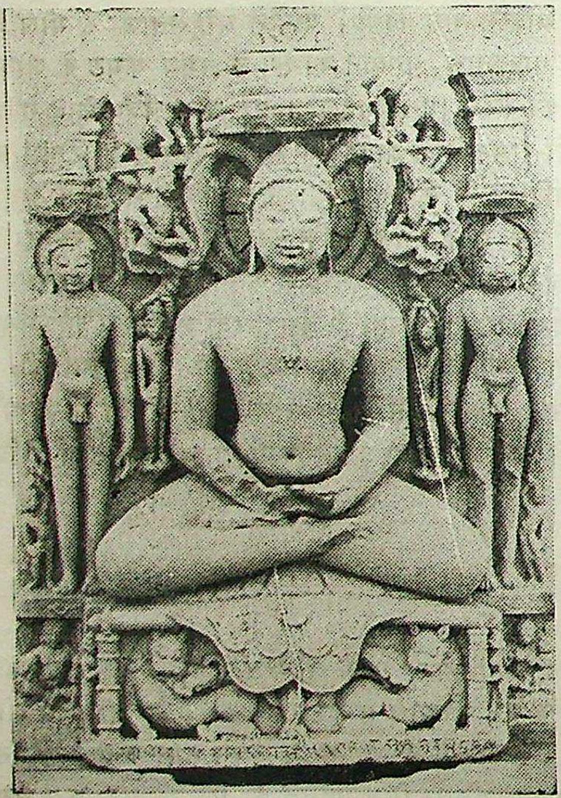

प्राचीन तीर्थङ्कर प्रतिमा (पारसनाथ किला, जिला बिजनौर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के अंश भी मिले हैं, जिनका प्रचलन गुप्तकाल में हुआ था। गुप्त शैली की अन्य कई कलाकृतियाँ भी इस स्थान में प्राप्त हुई हैं। अतएव यह स्थान गुप्तकाल जितना प्राचीन तो है ही। और ११वीं-१२वीं शती तक यहाँ अच्छी बस्ती रही प्रतीत होती है। ये विविध तथा अनेक जैन कलाकृतियां, कई जैन मन्दिरों के तथा एक अच्छे जैन अधिष्ठान (मठ या विहार) के चिन्ह यह सूचित करते हैं कि गुप्तोत्तर काल में यह स्थान एक समृद्ध एवं प्रसिद्ध जैन केन्द्र रहा होगा। इस स्थान से प्राप्त तीर्थन्कर प्रतिमायें भी सभी दिगम्बर हैं, जैसा कि मध्यकाल से पूर्व प्रायः सभी जिन प्रतिमायें होती थीं। पूर्वोक्त बढ़ापुर वाली विशालकाय पार्श्वप्रतिमा धरणेन्द्र पद्मावती समन्वित है, उसका घटाटोप फणमंडल भी दर्शनीय है और सिंहासन पर भी सर्प की एड़दार कुंडलियां दिखाई गई हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पारसनाथ किला के मुख्य जिनप्रासाद की मूलनायक प्रतिमा यही होगी। और जिस समय यह प्रतिष्ठित की गई होगी उस समय तक भ० पार्श्वनाथ के उपसर्ग की घटना तथा इस स्थान के साथ भी उनका सम्बन्ध रहे होने की बात स्थानीय जनता की स्मृति में सुरक्षित थी। संभव है कि भ० पार्श्वनाथ के समय से ही यह स्थान उनके नाम से प्रसिद्ध हो चला हो।

पूर्व मध्यकाल में इस प्रदेश में ध्वजवंशी नरेशों का शासन रहा अनुमान किया गया है। उनके मयूरध्वज, पीतध्वज, सोरध्वज, सुहिलध्वज आदि नाम प्राचीन स्थानीय अनुश्रुतियों में प्राप्त होते हैं। कनिंघम, एटकिन्सन आदि पुराविदों के अनुसार ये ध्वजवंशी राजे जैनधर्म के अनुयायी थे। संभव है कि इसी वश के जैन नरेशों के समय में यह जैन केन्द्र सर्वाधिक फला-फूला हो। यह भी हो सकता है कि इस वश का संस्थापक भ० पार्श्वनाथ का परम भक्त रहा हो और इसी कारण उसने अपनी राजधानी अथवा प्रधान दुर्ग का नाम पार्श्वनाथदुर्ग रक्खा हो जो मध्यकाल में पारसनाथ किला कहलाने लगा। इस स्थान से अनेक जैन मूर्तियाँ तथा अन्य कलाकृतियां आस-पास के बिजनौर, नगीना आदि नगरों और ग्रामों के मन्दिरों में भी पहुंच गयीं और शैलीसादृश्य से वे बहुधा सहज ही चीन्ह भी ली जाती हैं। व्यक्तिगत रूप से भी न जाने कितनी सामग्री यहाँ से स्थानान्तरित होकर लोगों के मकानों आदि के बनाने में काम आ गई होंगी।

किला मोरध्वज

ध्वजवंश का सर्व प्रसिद्ध नरेश, जो संभवतया इस वंश का संस्थापक भी हो, मयूरध्वज था। लोक कथाओं में वह मोरधज के नाम से प्रसिद्ध है। कुछ उसे महाभारत काल में हुआ मानते हैं और कुछ पूर्व मध्यकाल में। इस राजा के नाम पर एक प्राचीन दुर्ग के भग्नावशेष प्रसिद्ध हैं। रूहेलखंड तराई के कूल पर, बिजनौर जिले के नजीबाबाद नगर से ६ मील उत्तरपूर्व में, कोटद्वारा जाने वाली सड़क के पूर्व की ओर, ८०० फुट×६२५ फट परिमाण के एक अंडाकार भग्न

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दुग को किला-मोरधज नाम से पुकारा जाता रहा है। इस किले के भीतर पूर्वी दीवार के मध्य के निकट स्थित एक ऊँचे टीले को शीगिरि नाम से पुकारा जाता है। सम्भव है यह श्री गिरि या श्री गृह का अपभ्रष्ट रूप हो और उक्त स्थान पर एक उत्तुंग जिनालय रहा हो। किले के खण्डहरों में अनेक प्राचीन कलावशेष, जिनमें देव मूर्तियां भी हैं, प्राप्त हुये हैं। इस स्थान की भग्न मूर्तियों और पाषाणखंडों से ही निकटवर्ती पत्थरगढ़ नाम का किला निर्मित हुआ बताया जाता है। बिजनौर जिले के मंडावर नामक स्थान को हुएनसांग कालीन मतिपुर नगर से चीन्हा जाता है।

तराई क्षेत्र में ही, नैनीताल और रामपुर जिलों की मध्यवर्ती सीमा के निकट, चतुर्भुज नाम का ध्वस्त नगर है। यह नाम अर्वाचीन है और वहाँ से प्राप्त एक चतुर्भुज मूर्ति के कारण प्रसिद्ध हो गया। स्थान का प्राचीन मूल नाम क्या था, यह ज्ञात नहीं है, किन्तु वहाँ भी अनेक टीले बिखरे पड़े हैं और उनमें भी विभिन्न धर्मों से सम्बन्धित पुरातत्वावशेष मिलते रहे हैं। बदायुं जिले के मुख्य नगर बदायुं का मूल नाम वोदमयूत था और मुसलमानों के आगमन से पूर्व यहां राष्ट्रकूट वंशी नरेशों का राज्य था। पीलीभीत जिले में देवल नामक स्थान छिन्दुवंशी नरेशों की राजधानी ८वीं से १०वीं शती पर्यन्त रही। यह वंश नागवंश की ही एक शाखा रहा प्रतीत होता है। मुरादाबाद जिले में आम्रोद्यानपुर (अमरोहा), चौमुवा (मुरादाबाद) और संभलक-पुर (संभल) प्राचीन स्थान हैं।

इस प्रकार वर्तमान रूहेलखंड या बरेली कमिश्नरी के विभिन्न जिलों में अनेक प्राचीन स्थल हैं जिनमें से बहुत से उजड़ गये और अब टीलों-खेड़ों आदि के रूप में उनके भग्नावशेष ही शेष हैं। कुछ एक बच रहे, बसे रहे, किन्तु मुस्लिम शासन काल में उनके प्राचीन जैन, बौद्ध, शैव-वैष्णवादि धर्मायतन विध्वंस कर दिये गये। सभी प्राचीन स्थलों की सन्तोषजनक शोध-खोज भी नहीं हुई है। तथापि जितना कुछ हुआ है उससे इस विषय में तनिक भी सन्देह नहीं रहता कि इस सम्पूर्ण क्षेत्र के साथ और इसके प्रायः सभी प्रमुख प्राचीन स्थानों के साथ जैनों का और जैन संस्कृति का अल्पाधिक घनिष्ट सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन काल से रहता आया है।

जैन धर्म की प्राचीनता

धर्मतत्व शाश्वत है, उसका न कोई आदि है और न अन्त। किन्तु अमुक-अमुक नामांकित धर्म परम्पराओं में आपेक्षिक प्राचीनता-अर्वाचीनता का विकल्प ऐतिहासिक दृष्टि से होता ही है। यह भी आवश्यक नहीं है कि जो धार्मिक सम्प्रदाय जितना अधिक प्राचीन होगा वह उतना ही श्रेष्ठ और सर्वग्राह्य होगा। तथापि, जो धर्मपरम्परा श्रेष्ठ और सर्वग्राह्य होने के साथ-साथ प्राचीन भी सिद्ध हो तो वह उसकी एक अतिरिक्त विशेषता ही है। जैन परम्परा की प्राचीनता उपरोक्त वर्णन एवं विवेचन से ईसा से लगभग एक सहस्त्र वर्ष पूर्व तक तो आधुनिक इतिहासकारों द्वारा प्रायः

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वीकृत ही हो चुकी है। तथाकथित हिन्दूधर्म की शैव, शाक्त, वैष्णवादि परम्पराओं का तथा बौद्ध धर्म का उदय २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के पश्चाद्वर्ती काल की ही घटनायें हैं। भ० पार्श्व के समय में वैदिक धर्म अपने जीवन के संध्याकाल में था और श्रमण तीर्थंकरों के विचारों के प्रभाव से उसमें औपनिषदिक अध्यात्मवाद का उस समय विशेष प्राबल्य हो चला था।

भ० पार्श्व के पूर्ववर्ती २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ अपरनाम अरिष्टनेमि महाभारतकालीन नारायण कृष्ण और हस्तिनापुर के कुरुवंशी कौरवों एवं पांडवों के समकालीन थे। वह स्वयं कृष्ण के ताऊजात भाई थे और यदुवंशियों (हरिवंशियों) की प्रारम्भिक राजधानी शौरिपुर में महाराज समुद्रविजय की रानी शिवादेवी की कुक्षि से उनका जन्म हुआ था। शौरिपुर का त्याग करके यादवों ने पश्चिम समुद्रतटवर्ती द्वारका को राजधानी बनाया। वहीं निकटवर्ती जूनागढ़ की राजकुमारी राजुलदेवी के साथ नेमिनाथ के विवाह के अवसर पर मूक पशुओं की दशा से द्रवित नेमिकुमार ने भोग-ऐश्वर्य का त्याग करके गिरिनगर (उर्ज्जयंत पर्वत) के शिखर पर तपस्या की और वहीं से निर्वाण लाभ किया। महाभारत में वर्णित मूल घटनाओं तथा उसके कृष्ण आदि पात्रों को अब ऐतिहासिक स्वीकार किया जाने लगा है और इस प्रकार २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ की ऐतिहासिकता भी स्वतः सिद्ध हो जाती है। ईसा पूर्व १०वीं-९वीं शती के गिरनार से प्राप्त एक अभिलेख में खिल्दिया (मध्य एशिया) के तत्कालीन शासक नेबुचेदनजर द्वार 'गिरनार के स्वामि नेमिनाथ' का पूजार्थ दान देने का उल्लेख है। यह तथ्य भी तीर्थंकर नेमिनाथ की ऐतिहासिकता का समर्थक है। यजुर्वेद आदि में भी अरिष्टनेमि का उल्लेख है। रामायण में वर्णित अयोध्यापति रघुवंशी महाराज रामचन्द्र के समकाकीन २०वें तीर्थकर मुनिसुव्रतनाथ थे। स्वयं राम भी तपश्चरण करके अर्हंतकेवलि और मोक्षगामी सिद्ध परमात्मा हुये। जैन पद्मपुराण में उन्हीं के चरित्र का वर्णन है। हिन्दू पुराणों में काकन्दीनगरी में उत्पन्न ९वें तीर्थंकर पुष्पदत्त का काकुत्स्थ नाम से वर्णन है और प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव को तो विष्णु का अवतार ही प्रतिपादन किया गया है और उनके ज्येष्ठ पुत्र भरतचक्रवर्ती के नाम पर ही इस देश का भारतवर्ष नाम पड़ा, यह स्पष्ट कथन किया गया है। भ० ऋषभदेव का उल्लेख ब्राह्मण परम्परा के सर्वप्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद में भी है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि शैव परम्परा के महादेव, शंकर और शिव तथा प्राचीन योगिपरम्परा के प्रवर्त्तक आदिदेव भी यह आदि तीर्थंकर ऋषभदेव ही हैं। सिन्धु घाटी की प्रागैतिहासिक एवं प्राग्-आर्य सभ्यता के जो अत्यन्त प्राचीन अवशेष मोहन्जोदड़ों, हड़प्पा आदि स्थानों में प्रकाश में आये हैं उनसे भी यह प्रमाणित होता है कि उस काल और उस प्रदेश में भी वृषभलांछन दिगम्बर योगिराज आदितीर्थंकर ऋषभदेव की पूजा प्रचलित थी। वस्तुतः भगवान ऋषभदेव का जन्म जिस सुदूर अतीत काल में हुआ था उस समय भोगभूमि की व्यवस्था थी। मनुष्य का जीवन प्रायः पूर्णतया प्रकृत्याश्रित था, कर्म करना उसने अभी सीखा ही नहीं था। मनुष्य की अधुनाज्ञात प्राचीनतम प्रागैतिहासिक सभ्यताओं का भी संभवतया तब तक उदय नहीं हुआ था। १५वें कुलकर एवं मनु और प्रथम तीर्थंकर आदिपुरुष भगवान ऋषभदेव ने ही इस कल्पकाल में सर्वप्रथम मानवी सभ्यता का ॐ नमः किया, मनुष्यों को असि, मसि, कृषि, शिल्प, वाणिज्य आदि कर्म सिखायें, अक्षरज्ञान एवं अंक ज्ञान दिया, ग्राम नगर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आदि बसाये, देश विभाजन और राज्यव्यवस्था की तथा अन्त में मोक्षमार्ग का उपदेश दिया, और स्वयं उक्त मार्ग पर चलकर मोक्षगामी हुए। उन्हीं की परम्परा में समय-समय पर २३ अन्य तीर्थंकर हुये जिनमें वर्द्धमान महावीर (छठी शती ईसा पूर्व) अन्तिम थे। भ० महावीर ने ही जैनधर्म को उसका वर्तमान रूप प्रदान किया। गत अढ़ाई सहस्त्र वर्ष से उन्हीं का धर्मशासन प्रवर्तित है। किन्तु महावीर जैनधर्म के संस्थापक नहीं है। उन्होंने किसी नवीन धर्म का प्रवर्त्तन नहीं किया, वरन् वृषभादि पार्श्वनाथ पर्यन्त पूर्ववर्ती २३ तीर्थंकरों द्वारा उपदेशित धर्म का ही जनभाषा में समयानुकूल उपदेश दिया और प्रचार किया।

इस प्रकार जैन परम्परा की प्राचीनता मानवी सभ्यता के आद्य युग तक पहुंचती है। अहिंसावादी, निवृत्तिप्रधान, आत्मधर्मी अर्हतों की यह आर्हत परम्परा विशुद्ध भारतीय एवं प्राग्वैदिक तथा प्रागार्य है। जब वैदिकधर्म का उदय हुआ तो इस आर्हत परम्परा से उसका भिन्नत्व सूचित करने के लिये उक्त वैदिक परम्परा को वार्हत परम्परा कहा गया। वैदिक परम्परा में ब्राह्मणों का प्राबल्य हुआ तो वह ब्राह्मण परम्परा कहलाने लगी। आर्हत परम्परा के पुरस्कर्त्ता मुख्यतया क्षत्रिय थे जो श्रमपूर्वक आत्म शोधन पर तथा व्रतचारित्ररूप संयम पर बल देते थे। अतएव वैदिक साहित्य में उन्हें व्रात्य कहा गया और उत्तर वैदिक साहित्य में श्रमण। श्रमण-ब्राह्मण संघर्ष चिरकाल तक चला, भारतीय संस्कृति की इन दोनों धाराओं में परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया और आदान-प्रदान भी होते रहे। कालान्तर में श्रमण परम्परा में आजीविक, बौद्ध आदि अन्य कई सम्प्रदाय भी उत्पन्न हुये। ब्राह्मण वैदिक परम्परा ने भी शनैः शनैः भागवत्धर्म तथा पौराणिक या सनातन हिन्दू धर्म का रूप लिया। और उक्त आर्हत, व्रात्य अथवा श्रमण परम्परा की मूलधारा का प्रतिनिधित्व निर्ग्रन्थ अथवा जैनधर्म करता रहा और आज भी कर रहा है।

जैन धर्म के मुख्य सिद्धान्त

समस्त आत्मीक विकारों को पूर्णतया जीतकर जो परमात्मा बन गये हैं उन्हें जिन, जिनेन्द्र या जिनेश कहते हैं। उनके द्वारा आचरित एवं उपदेशित धर्म को जैनधर्म कहते हैं और उसके अनुयायियों को जैन या जैनी। आत्मा-परमात्मा, लोक-परलोक, पुण्य-पाप और उनके फलाफल में आस्था रखने के कारण जैन धर्म एक सर्वथा आस्तिक धर्म है।

यह चराचर जगत या विश्व स्वतः सिद्ध, वास्तविक और अनादिनिधन है। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल, छः द्रव्य हैं, जो सभी शाश्वत और अविनश्वर हैं तथा इस विश्व के उपादान हैं। इनमें से जीव चेतनद्रव्य है, उसे ही आत्मा कहते हैं, शेष पांच जड़, अजीव अथवा अचेतन द्रव्य हैं। जीवात्मायें अनन्त हैं। प्रत्येक आत्मा की स्वतन्त्र सत्ता है। आत्मीक गुण-धर्म की दृष्टि से समस्त आत्मायें समान हैं, किन्तु विकासक्रम तथा उक्त गुणों की अभिव्यक्ति की दृष्टि से उनमें परस्पर भिन्नता है। तथापि प्रत्येक आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति निहित है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आत्मायें मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित हैं—मुक्त आत्मा और संसारी आत्मा। जिन आत्माओं ने स्वपुरुषार्थ द्वारा स्वयं को संसार के बन्धनों से सर्वथा स्वतन्त्र करके पूर्णत्व, परमात्मत्व एवं सिद्धत्व प्राप्त कर लिया है उन्हें मुक्तात्मा या सिद्ध परमेष्टि कहते हैं। शेष समस्त आत्मायें संसारी हैं और वे कर्मपुद्गल से बद्ध होने के कारण देव-नारक-मनुष्य-तिर्यन्च नामक चतुर्गतिरूप संसार में जन्म-मरण रूप संसरण करती रहती हैं।

जीव-अजीव के अनादि सम्बन्ध और क्रिया-प्रतिक्रिया के परिणाम स्वरूप जीव-अजीव आस्रव-बंध-संवर-निर्जरा-मोक्ष, इन सात तत्वों की निष्पत्ति होती है। इनमें पुण्य और पाप मिलाने से ये ही नव पदार्थ कहलाते हैं।

वस्तुस्वभाव का नाम धर्म है। जो जिस वस्तु का परानपेक्ष निजी स्वभाव है वही उसका धर्म है। जीव या आत्मा एक ज्ञान-विशिष्ट चेतन तत्व है। उसका अपना स्वभाव या धर्म शुद्ध, बुद्ध, निरन्जन, निर्विकार, ज्ञानदर्शनमयी है, किन्तु संसार, अजीव अथवा कर्मवन्धन में बंधे रहने के कारण उसका यह स्वभाव या धर्म प्रगट नहीं हो पाता। अतएव इस धर्म को प्राप्त कराने का जो मार्ग है उसे ही धर्ममार्ग या मोक्षमार्ग कहते हैं। इस मार्ग पर चलने से और उसके अनुसार साधना एवं आत्मशोधन करने से संसारी आत्मा वन्धन से निकल कर स्वतन्त्र एवं मुक्त हो जाती है, आत्मा परमात्मा वन जाती है। अपने जीवन में ही जो इस परमप्राप्तव्य को प्राप्त कर लेते हैं वही सकल परमात्मा, केवलि, जिन या अर्हंत परमेष्ठि कहलाते हैं। उन्हीं में से कोई-कोई धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करने के कारण तीर्थन्कर कहलाते हैं। उनके अनुयायीं निर्ग्रन्थ मुनियों में आचार्य, उपाध्याय और साधुसामान्य भेद करके इन तीनों को भी परमेष्टि संज्ञा दी जाती हैं। इस प्रकार अर्हंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-साधु नामक पन्चपरमेष्टि ही मोक्ष मार्ग के प्रवर्त्तक, साधक, प्रेरक एवं रक्षक होने के कारण परम पूजनीय, श्लाधनीय एवं वन्दनीय हैं। उनकी पूजा, उपासना और भक्ति द्वारा ही मुमुक्ष को मोक्षमार्ग में रुचि उत्पन्न होती है और उस पर चलने की प्रेरणा मिलती है। परमेष्टि की भक्ति ही सर्वकल्याणकारी तथा निःश्रेयस एवं अभ्युदय सुख प्रदान करने वाली है।

मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चरित्र रूप रत्नत्रयी की अराधना एवं प्राप्ति में निहित है। सभी व्यक्ति अपनी अपनी शक्ति और सामर्थ्य अथवा परिस्थितियों के अनुसार इस मार्ग का अवलम्बन ले सकते हैं। जो संसारदेह-भोगों से विरक्त होकर और समस्त परिग्रह का त्याग करके एकनिष्टता के साथ इस मोक्षमार्ग की साधना में रत होते हैं, उन साधुओं और साध्वियों की आचारसंहिता उच्चकोटि की होती है। किन्तु जो गृहस्थ श्रावक-श्राविका हैं और लौकिक जीवन यापन करते हैं उनके लिये श्रावकाचार के नियम और विधान हैं।

देवपूजा-गुरुपास्ति-स्वाध्याय-संयम-तप-दान रूप षट् दैनिक आवश्यक कर्मों का पालन, अहिंसा (संकल्पी हिंसा का त्याग)-सत्य-अचौर्य-शील (स्वदार सन्तोष अथवा स्वपुरुष सन्तोष)-परिग्रह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिमाण नामक पांच अणुव्रतों का ग्रहण, मद्य-मांस-जुआ-चोरी-शिकार-वेश्यासेवन-परस्त्री (या परपुरुष) सेवन नामक सात व्यसनों का त्याग, क्षमा-मार्दव-आर्जव-सत्य-शौच-संयम-तप-त्याग-आकिन्चन-ब्रह्मचर्य नामक दशलाक्षण धर्म का आराधन एवं साधन, मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थ नामक भावनाओं का मनन, धर्मपूर्वक काम और अर्थ पुरुषार्थो का सेवन, जो कुछ स्वयं के साथ घटता है उसे अपने ही किये गये शुभाशुभ कर्मों का फल जानकर समभाव से सहन करना और इस बात के लिये प्रयत्नशील रहना कि वर्तमान और भविष्य में ऐसे कार्य मन-वचन-काय से न करें जिनके फलस्वरूप अनिष्ट एवं अप्रिय घटनायें घटें, पुरूषार्थ प्रधान और आशावादी होते हुये आत्मविश्वास के साथ आत्मिक विकास के पथ पर अग्रसर होते जाना, सहिष्णुता, परोपकार और प्राणिमात्र की कल्याण कामना करते रहना-साधारणतया एक जैन गृहस्थ से यह सब अपेक्षित है। जैन धर्म का यही उपदेश है।

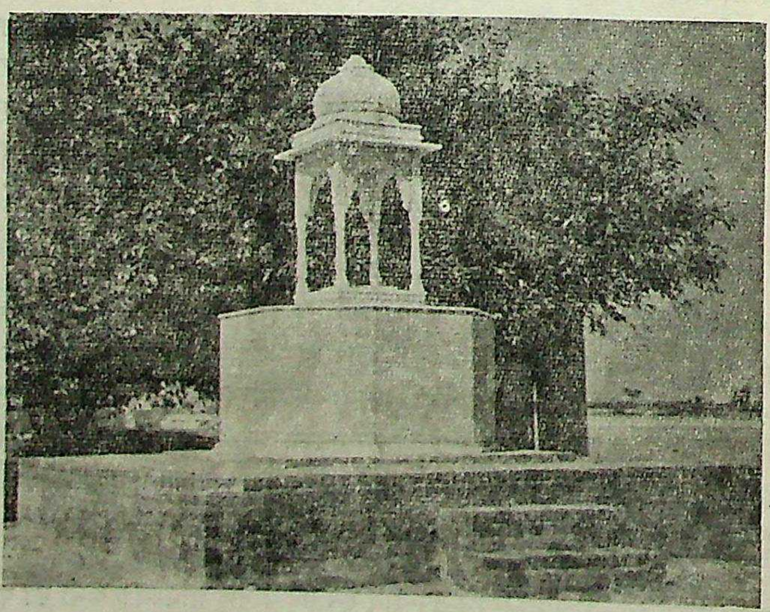

चरणपादुका (अहिच्छत्रा)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

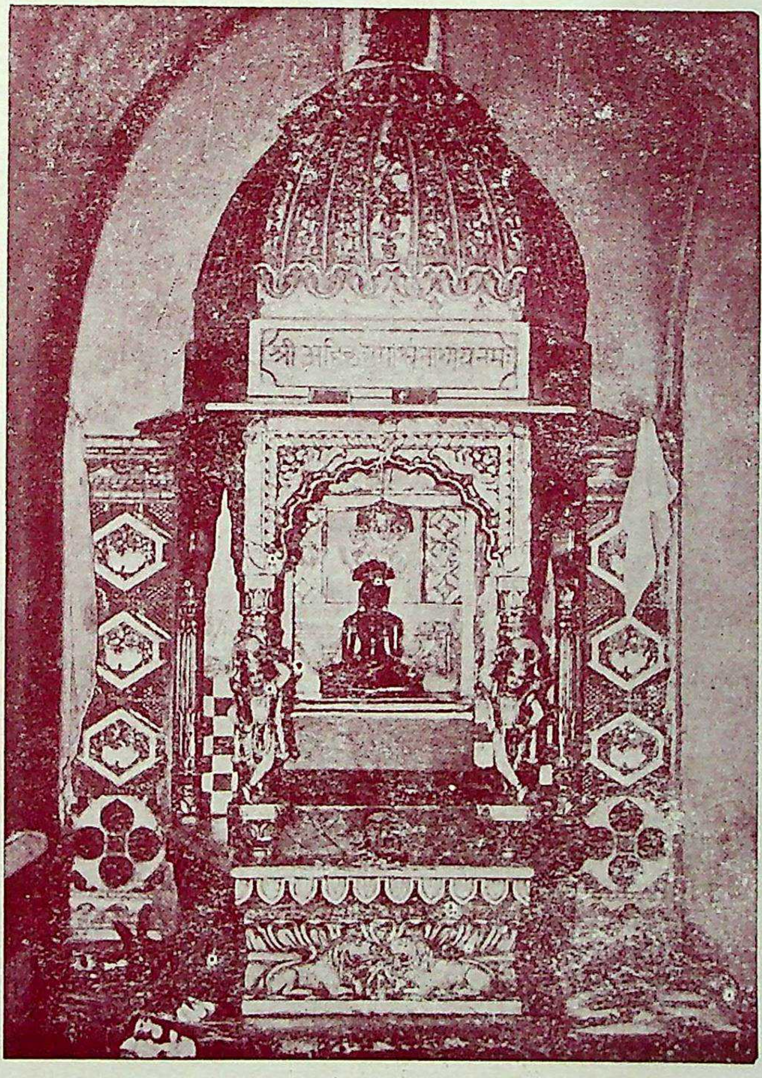

श्री दि० जैन मंदिर अहिच्छत्रा की मुख्य वेदी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

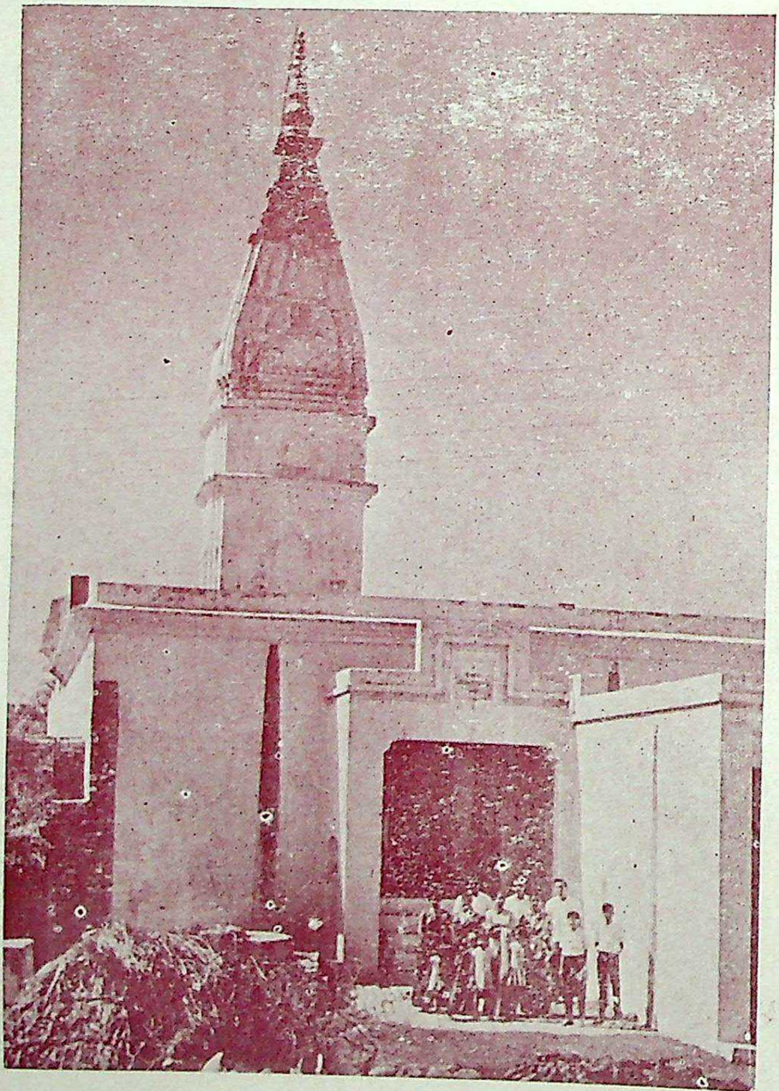

श्री दि० जैन मंदिर अहिच्छत्रा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh